योग सिद्धान्तो और शिक्षाओ का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : **योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज**

वर्ष 32 फरवरी-मार्च 2000 संयुक्तांक 11/12

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
रुंधाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

❒

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

❒

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

❒

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति	रु० 8-00
वार्षिक शुल्क	रु० 75-00
द्विवार्षिक	रु०140-00
आजीवन	रु०750-00

इस अंक में

❒ ब्रह्म यत् परम् 1
❒ अमृतकण........................... 2
❒ श्रद्धावान ही ज्ञान पाता है; संशयात्मा नहीं (विशेष लेख) 3
❒ सम्पादकीय 7
❒ जय हो तुम्हारी सहस्राब्द जय हो। द्वारका प्रसाद शर्मा 10
❒ ।। ज्ञान-ध्यान-महापूजा ।। पं. श्री गुरुशरण दास 10
❒ योग साधना में ध्यान का महत्व प्रो० आचार्य चन्द्रहास शर्मा 11
❒ परदोष-दर्शन पं. कृष्ण दत्त जी भट्ट 15
❒ किमस्तियोग: द्वारका प्रसाद शर्मा.................. 19
❒ गीता जी में योग ही योग डा० स्वामी केशवाचार्य 23
❒ अर्जुन तथा मानव मात्र के लिए गीता में भगवान के आदेश ब्र. ओम प्रकाश 27
❒ वैष्णव भक्त पर अहेतुकी कृपा केशवदेव उपाध्याय 31
❒ महाप्रभु जी की सहस्त्राब्दि को देन ! अवनीश कुमार भटनागर 34
❒ स्वास्थ्य-चर्चा 35

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 32
अंक 11/12

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवर्त्तो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

फरवरी
मार्च
2000

ब्रह्म यत् परम्

यः सेतुरीजानानामक्षरं
ब्रह्म यत् परम्।
अभयं नितीर्षतां पारं
नाचिकेतँ शकेमहि।।

कठोपनिषद् १/३/२

भावार्थ

यज्ञ करने वालों के लिए जो दुःख समुद्र से पार पहुँचा देने योग्य सेतु है, उस नाचिकेत अग्नि को और संसार समुद्र सें पार होने की इच्छा वालों के लिए जो भयरहित पद है; उस अविनाशी परब्रह्म पुरुषोत्तम को जानने और प्राप्त करने में भी हम समर्थ हों।

अमृत कण

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्।।

(महाभारत शांतिपर्व ३३०/२०)

संग्रह का अन्त है विनाश। ऊँचे चढ़ने का अन्त है नीचे गिरना। संयोग का अंत है वियोग और जीवन का अन्त है मरण।

※※※

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः।।

श्री मद्भागवत ३/२३/५६

संसार में जिस पुरुष के कर्मों से न तो धर्म का सम्पादन होता है और न भगवान की सेवा ही सम्पन्न होती है, वह पुरुष जीते-जी मुर्दे के समान है।

※※※

आनृशंस्यं क्षमा शान्तिरहिंसा सत्यमार्जवम्।
अद्रोहोऽ नभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा शमस्तथा।।
पन्थानो ब्रह्मणस्त्वेते एतैः प्राप्नोति यत्परम्।
तद् विद्वाननुबुद्ध्येत मनसा कर्मनिश्चयम्।।

(महा० शान्ति० २७०/३९-४०)

समस्त प्राणियों पर दया, क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य, सरलता, अद्रोह, निरभिमानता, लज्जा, तितिक्षा और शम-ये परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग है। इनके द्वारा पुरुष परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार विद्वान पुरुष को मन के द्वारा कर्म के वास्तविक परिणाम का निश्चय समझना चाहिये।

विशेष लेख

श्रद्धावान ही ज्ञान पाता है; संशयात्मा नहीं

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अखिलात्मा श्री कृष्ण चन्द्र जी ने गीता में-श्रद्धालु व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त का अधिकारी होता है- इस बात को खूब स्पष्ट रूप से बता दिया है। **'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'** अर्थात् श्रद्धावान ही तत्वज्ञान को पाया करता है। इसके विपरीत **'अज्ञश्च अश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति'** अर्थात् जो व्यक्ति अज्ञानी है, श्रद्धारहित तथा संशयात्मा है वह नष्ट हो जाता है। संशय व्यक्ति को कुछ करने ही नहीं देता। इसलिए वह अन्त में 'विनश्यति' की डिग्री को प्राप्त कर लेता है। इसलिये पहली बात यह है कि मनुष्य के मन मे श्रद्धा होनी चाहिये। श्रद्धा सतोगुण वृद्धि का फल है। श्रद्धावान व्यक्ति श्रद्धा के आधार पर अपने सभी कार्य सिद्ध कर लिया करता है। दूसरी बात है मनुष्य को अज्ञानी नहीं होना चाहिये, उसे ज्ञानवान होना चाहिये। तीसरी बात है वह संशयात्मा न हो। संशय होने पर मनुष्य सोचने लगता है-गुरुदेव ने जो मंत्र दिया है, ठीक भी है या नहीं। ध्यान की विधि बताई है इससे मेरा कल्याण होगा या नहीं- इस प्रकार से संशय से ग्रस्त हो जाता है। साधारण लोकोक्ति भी हैं **'दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम'**। संशय दुविधा मे डाल देता है। हमने एक लड़के को योग दीक्षा दी। वह पढ़ा लिखा नही था, तथा संशयात्मा भी था। उसको अपने मन्त्र पर विश्वास नही रहा। अपने संशय को किसी धर्म प्रचारक के सामने रखा। उस प्रचारक ने उसे बहका दिया। यह मन्त्र गृहस्थियों को तो जपना ही नही चाहिये। क्योंकि वह लड़का पढ़ा लिखा नहीं था, योग शास्त्रों का ज्ञाता नही था इसलिये संशय हुआ। वेद उपनिषद तो इस मन्त्र के विषय मे कहते है-**हंस हंस इत्यमुम मन्त्रम् जीवो जपति सर्वदा। अनया सदृशी विद्या, अनयास्दृशो जपः। अनया सदृशं मन्त्रं न भूतो न भविष्यति।** अर्थात्! 'हंस-हंस' इस मन्त्र का जीव सदा जप करता है। इस के समान न कोई विद्या है, न कोई जप है और न कोई मन्त्र है, और न ही होगा। ऐसी इस मन्त्र की महिमा वेद शास्त्र मे गाई गयी है। किन्तु उसे बता दिया कि यह गृहस्थियों को नही जपना चाहिये। इधर अज्ञानी था साथ मे श्रद्धाविहीन था और साथ-साथ संशयात्मा हो गया। ऐसे लोगों के विषय में भगवान के स्वयं के शब्द है **अज्ञश्च अश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति।** मनुष्य अज्ञानी हो अश्रद्धालु हो और संशयात्मा हो तो उसका पतन हो जाया करता है। देखो ! दो बातें होती है, योग दर्शन का एक सिद्धान्त है **'निर्माणचित्तान्यस्मिता मात्राद्'** योगी जब अस्मितानुगत समाधि में पहुँच जाता है तो उसमें चित्त बनाने की योग्यता आ जाती है। वह अपने

अनेकों चित्त बनाकर एक साथ हजारों के पास आकर मिल सकता है। बातचीत कर सकता है इस प्रकार ध्यान योग के विज्ञान से वह हजारों व्यक्तियों के जो भाव है वह उसके चित्त में आ जायेंगे। यह तो है चित्त निर्माण का फल। और जिसको चित्त निर्माण करना आ जायेगा समय पर उसको काय निर्माण भी करना आ जायेगा। इस प्रकार वह अपने अनेकों शरीर बना सकता है। मैंने तुम्हें बताया हुआ है कि आनन्द कन्द श्री प्रभु जी जब नैपाल हिमालय से आये तो कम से कम २५-३० शरीर धारण करके काय निर्माण करके आये। हम लोगों ने जिनकी चरण शरण ग्रहण की है वह तो उनका निर्मित शरीर था। नैपाल में जो शरीर है वह अब भी समाधिस्थ ही है। तुम यह मत सोचो कि प्रभु जी कहीं चले गये वह तो काय निर्माण से आये थे और काय निर्माण से ही चले गये। अभी छः सात वर्ष पूर्व हमारा एक साधक बच्चा तपस्या करके नैपाल हिमालय में पहुँच गया। वहाँ एक ब्रह्मचारी योगी मिल गये। उस साधक से पूछा-बेटा ! तुम योगिराज चन्द्र मोहन जी के बालक हो ? उसने उत्तर दिया- हाँ ! महाराज, मै उनका ही शिष्य हूँ! उस ब्रह्मचारी ने कहा-तुम यहाँ प्रभु जी की याद में पड़े हो, चलो! प्रभु जी ने तुम्हें याद किया है। वह योगी उस बालक को आकाश मार्ग से पलभर में ही वहाँ ले गये जहाँ प्रभु जी की स्फटिक मणि की गुफा है। वहाँ प्रभु जी समाधि से उठे हुये थे। उस साधक को देखकर उन्होंने कहा-

तुम हमें याद कर रहे थे हमने तुम्हें बुला लिया। तुम हमें छूना नहीं। बस, तुम्हें दर्शन हो गये' ब्रह्मचारी से कहा-छोड़ आओ इसको वही पर जहाँ से लाये हो! ब्रह्मचारी उन्हें नीचे छोड़ गया। हमारा वह साधक मौजूद है तुम पूछोगे तो सारी घटना बता देगा। मेरे कहने का अभिप्राय है कि प्रभु जी नैपाल धाम मे अब भी मौजूद है। यहाँ पृथ्वी पर काय निर्माण करके आये। खैर! चित्त निर्माण करने की योग्यता योगी में आ जाती है। यह तो है योग की बात! योग में जिसको ऊँचा प्रवेश नहीं है क्या वह भी चित्त निर्माण कर सकता है ? हाँ कर सकता है, उसका एक तरीका है। वह हमारे तुम्हारे चित्त भी बनवा सकता है। अपने तो क्या करेगा वह-किन्तु यदि उसके अन्दर पूर्ण श्रद्धा है संशयात्मा नहीं है, ज्ञानी, वेद-वेदान्त का ज्ञाता हो तो बहुत ही अच्छी बात है, न भी हो किन्तु श्रद्धा भरपूर हो और उसके मन में किसी प्रकार का संशय भी न हो तो वह हमारे तुम्हारे चित्त भी बना सकता है। जिसके प्रति उसकी श्रद्धा है, विश्वास है वह उसका चिन्तन करेगा। यह हम श्री प्रभु जी का चित्र सामने रखकर क्यों बैठते है ? मैंने कल अपने व्याख्यान में बताया था-**नास्ति तत्वं गुरोः परम्** मैंने योग के नौ विघ्नों का वर्णन किया था और उनको हटाने का उपाय बताते हुये कहा था-**तत्प्रति षेधार्थम् एक तत्वाभ्यासः**। विघ्नों को दूर करने के लिये एक तत्व का-मूल तत्व का अभ्यास करें- जो सबसे बड़ी ताकत है। उसका चिन्तन करें तो स्वाभाविक विघ्न नाश होता है। तो वह व्यक्ति जिसमें श्रद्धा है, **श्रद्धा माते कल्याणी योगिनम् पाति,** श्रद्धा माँ की तरह योगी का सम्हाल करती है वह सब कुछ पाता है-उसके लिये एक नियम चलता है-'**कृतार्थम्प्रति नष्ट**

मप्यनष्टम् तदन्य साधारणत्वात्' महापुरुष जो मुक्त हो चुके है श्रद्धालु व्यक्ति कही पर बैठ कर उनका चिन्तन करता है। श्रद्धा करके अपने मन में उसकी मूर्ति का ध्यान करता है तो उसके फलस्वरूप उनका निर्माणित चित्त उनकी ओर से कुदरती ईश्वर की ओर से बना हुआ चित्त उस पुतले में आवेशित हो जाता है इसके फलस्वरूप वह पुतला बोलेगा, बात करेगा, शिक्षा देगा, कृपा करेगा। एकलव्य कुमार को ऐसा ही हुआ था।

द्रोणाचार्य ने अर्जुन को वचन दिया था तेरे समान धनुर्विद्या का गुण किसी को नहीं दूँगा! एकलव्य को द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या सिखाने से इन्कार कर दिया। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बना ली उसे ही गुरु मान कर श्रद्धा पूर्वक विद्या का अभ्यास करता रहा। एक दिन अर्जुन और एकलव्य का आमना-सामना हो गया। एकलव्य ने अर्जुन के सारे बाण काट दिये। अर्जुन ने उससे पूछा-तू किसका शिष्य है ? उसने कहा-मै द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ। अर्जुन जाकर अपने गुरुदेव से पूछने लगा-गुरुदेव! आपने तो वचन दिया था तेरे बराबर विद्या मै किसी को नही दूँगा किन्तु उस भील के लड़के को तो आपने मुझ से ज्यादा गुणी बना दिया है। द्रोणाचार्य ने कहा-मै उसे नही पहचानता तुम मुझे उसके पास ले चलो। वहाँ पहुँच कर द्रोणाचार्य ने एकलव्य से पूछा-बेटा! तुम किसके शिष्य हो ? तुमने यह बाण विद्या किससे सीखी है ? एकलव्य ने उत्तर दिया-गुरुदेव मै आपका शिष्य हूँ। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बना रखी थी, उसी का ध्यान करके अभ्यास करता था ? वह मूर्ति क्रियात्मक हो गई उसकी श्रद्धा के कारण वह बना हुआ चित्त उस मूर्ति मे प्रवेश हो गया। द्रोणाचार्य को इस बात का ज्ञान नही हुआ किन्तु उनके बने हुये चित्त ने एकलव्य को सारी विद्या सिखा दी! उसने योग विज्ञान से विद्या सीखी थी किन्तु अन्याय हुआ उसके साथ! द्रोणाचार्य ने कहा-यदि तू मेरा शिष्य है तो गुरु दक्षिणा में अपने दाँये हाथ का यह अंगूठा काट कर दे दे। उसके दाँये हाथ का अंगूठा मांग लिया। कायदे से दो द्रोणाचार्य ने विद्या सिखाई नही थी। उसने अपनी श्रद्धा से, योग शक्ति से द्रोणाचार्य के चित्त का आकर्षण करके उससे विद्या सीखी थी यह तो ब्रह्म ज्ञान था, ईश्वरीय सत्ता की बात थी। किन्तु माँगे जाने पर श्रद्धा के कारण उसने अपना अंगूठा काट कर दे दिया। अंगूठा काट लेने के बाद भी उसने अर्जुन से मुकाबला किया और उसके छक्के-छुड़ा दिये।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि एक योगी अपनी शक्ति से चित्त निर्माण करता है और दूसरा वह-श्रद्धा के आधार पर जिस पुतले का चिन्तन करेगा उसका निर्माणित चित्त आ जायेगा और सारे गुण उसको दे देगा। सबसे बड़ी खास बात यह है कि हमारी यह योग विद्या **परा विद्या** है। इससे बढ़कर कुछ नहीं है। इसलिये अपने मन को योग ध्यान परायण बनाओ, अपने गुरु मन्त्रों का जाप करो, किसी के बहकाने से मन इधर-उधर विचलित नही करना। **अज्ञश्च अश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति** जो यज्ञ है श्रद्धा रहित है और संशयात्मा है वह नष्ट हो जाता है। कल मैंने

अपने एक लड़के का उदाहरण देते हुये इस बात को बताया था। उस लड़के को हमने लाहौर में योग दीक्षा दी थी। दीक्षा लेने के बाद उसे बड़े-बड़े अनुभव होने लगे। भगवान राम, कृष्ण एवं शिव के दर्शन ध्यान में होने लगे। उसने आकर जय दयाल गोयन्दका से अपने ध्यान के विषय में पूछा-देखो ! ऋषिकेश में गंगा किनारे झाड़ियों में केशवानन्द अवधूत रहते थे। जब दयाल उनके दर्शन करने के लिये गये उन्होंने इन्कार कर दिया। दर्शन नही देंगे। इसके बाद भगवान कृष्ण ने केशवानन्द से कहा कि यह मेरा भक्त है इसको दर्शन दो-केशवानन्द ने बात मान ली बाहर आकर दर्शन दे दिया। हमारे उस बच्चे ने जय दयाल से पूछ लिया हमारा यह ध्यान कैसा है ? उन्होंने कहा-नही, यह ध्यान नही माया है ! उस लड़के ने ध्यान का अभ्यास छोड़ दिया। उसका नाम सदानन्द है। गोरा-गोरा नाटा सा है। मुझे एक बार बाद में भी वृन्दावन में मिला था, हमसे कहने लगा गुरु जी ! अब मेरा ध्यान ही नहीं लगता! हमने कहा-प्रभु जी की कृपा से स्थिति बनी थी, वह तुमने खो दी। अब तो पुरुषार्थ से ही स्थिति को बनाओ। इस प्रकार संशय करने पर अपनी स्थिति को वह खो बैठा। इसलिये **'अज्ञश्य अश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति'** अर्थात् जो मनुष्य अज्ञानी है, श्रद्धारहित है तथा संशयात्मा है वह नष्ट हो जाता है। इसलिये श्री प्रभु जी के चरणों को अपने हृदय में धारण करके अपने आप को योग मार्ग की ओर लगाओ। तुम इस समय प्रयाग क्षेत्र में रह रहे हो। पुराणों में प्रयाग क्षेत्र की बहुत महिमा लिखी है। वे सब सत्य है। ऐसा कोई कुम्भ नही होता जिसमें सिद्ध योगिराज नही आते। सिद्ध लोग आते है पर गुप्त रूप से रहा करते है। उनको हर व्यक्ति पहचान नहीं सकता। हर व्यक्ति जान नही सकता। मनुष्य की तरह सामने आकर चले जाया करते है। तुम इस ब्रह्म क्षेत्र के अन्दर तीर्थ राज के अन्दर रह रहे हो। अब की बार हम भी लगभग डेढ़ या दो माह यहाँ रहे ही रहे। हम तुम्हें यहाँ नियमित योगोपदेश कर रहे है। हमारे उपदेश के अनुसार जिन लोगो ने अपने गुरु मन्त्रों का जाप किया होगा। यह निश्चित बात है उनको सिद्धानुकम्पा प्राप्त हुई। सिद्ध लोग देख लेते है कौन क्या कर रहा है। जो साधना करता है उस पर उनकी कृपा हो जाया करती है। वह सहायता मिल जाती है जिस सहायता के कारण उसका उत्थान हो जाया करता है और वह कल्याण की ओर बढ़ जाता है। श्री प्रभु जी सिद्धों के भी महासिद्ध है इसमें कोई शंका की बात नही। मैंने कई बार बताया है कि ऋषिकेश में शीशम झाड़ी में केशवानन्द रहा करते थे। वे अन्तर्द्रष्टा थे। उन्होंने प्रभु जी के बारे में मुझ से कहा था-"ये लोग तो कभी हिमालय छोड़ते ही नही। ये यहाँ है तो कैसे है ? बड़े आश्चर्य की बात है ?" उन सर्वशक्तिमान के चरण तुम लोगों के लिए गये है। वे नैपाल में बैठे हुये अपने हर बच्चे को देखते है। उनके चरणों का ध्यान करते हुये उठते बैठते, चलते फिरते हर समय मन्त्र का जाप करो। ऐसा करोगे तो कोई भी, किसी भी प्रकार की दिक्कत की बात सामने नहीं आयेगी। इसलिये अपने अभ्यास को बढ़ाओ।

***

विश्व का महानतम आशावादी ग्रन्थ श्रीमद्भगवद् गीता

हमारे इस भूमण्डल पर सैकड़ों धर्म, मत एवं सम्प्रदाय है। इन भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों के अपने-अपने धर्मग्रन्थ है जिन्हें वे सर्वाधिक पूज्य व पवित्र मानते है। इसी क्रम में हमारी हिन्दू जाति के लोगों का पवित्रतम ग्रन्थ **गीता** है। यदि संसार के इन सभी धर्म ग्रन्थों का अवलोकन किया जाये तो ज्ञान एवं व्यापक सन्देश की दृष्टि से गीता का स्थान सर्वोपरि पाया जायेगा। इसका मुख्य कारण यह है कि यह स्वयं भगवान के मुखारविन्द से निकली हुई वाणी है। अन्य धर्मों के धर्मग्रन्थ या तो धर्म गुरुओं की वाणी है या पैगम्बर या ईश-दूतों के उपदेश है। अन्य धर्म ग्रन्थों की अपेक्षा गीता प्राचीनतम है। भगवान श्री कृष्ण चन्द्र को इस पृथ्वी पर प्रकट हुये आज साढ़े पाँच हजार वर्ष से भी अधिक समय हो गया है। ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म तथा अन्य धर्मों का उद्‌भव हजार दो हजार वर्ष के अन्तराल में ही हुआ है। गीता को छोड़कर अन्य धर्मों के ग्रन्थ अपने ही वर्ग या धर्मानुयायियों के लिये मार्ग प्रशस्त करते है। कहीं-कहीं पर वे अपने धर्म को श्रेष्ठ तथा अन्य धर्मों को अवर या हेय मानते है। इसका मूल कारण यह है कि उन धर्म ग्रन्थों के रचयिता सर्वज्ञ तथा **'सर्वभूत हितेरता:'** की भावना से युक्त नहीं थे। गीता किसी एक सम्प्रदाय, समाज विशेष या जाति विशेष के लिये कही गई वाणी नहीं है। अपितु समस्त मानव जाति के लिये है। अतएव यह सार्वभौमग्रन्थ है। इसमें कही गई बातें अध्यात्म विज्ञान से सम्बन्धित है जो सबके लिये एक समान लागू होता है।

गीता में केवल एक स्थल पर ही धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। भगवान अर्जुन से कहते है-**सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज'।** अर्थात् हे अर्जुन ! नाना प्रकार के शास्त्रमत एवं सम्प्रदायों के धार्मिक क्रियाकलापों को छोड़कर तू सब प्रकार से अपने मन को मुझ वासुदेव में लगा ले। यदि ऐसा कर लेगा तो मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा।

गीता का ज्ञान युगों-युगों से अज्ञानान्धकार में भटकते हुये प्राणियों के लिये अखण्ड प्रदीप का काम कर रहा है। सद्‌मार्ग से च्युत होते हर मानव को रोशनी देकर गीता सन्मार्ग पर ला देती है। भगवान पापियों के जीवन में भी आशा की किरण देकर उन्हें ईश्वरीय पथ पर आने की प्रेरणा देते है। भगवान के लिए घृणास्पद नहीं। भगवान कहते है-हे अर्जुन ! यदि कोई पापियों में भी घोर पापी है वह भी योग ज्ञान का अवलम्ब लेकर तुरन्त ही पापों से मुक्त होकर संसार सागर से पार हो जाता है। भगवान की भक्ति वह अग्नि है जिसमें प्राणियों के समस्त पाप जलकर भस्म हो जाते है।" भगवान कहते है-"सब प्राणियों के प्रति मेरा समान भाव रहता है न तो कोई मेरा प्रिय है न कोई द्वेष्य। किन्तु जो कोई मुझे भक्ति पूर्वक स्मरण करता है तो वह मनुष्य मुझ में रहता है और उसके ह्रदय में मैं विराजमान रहता हूँ। हे अर्जुन! यदि कोई दुराचारी भी है तो भक्ति के प्रभाव से उसके पाप नष्ट हो जाते है। फिर ऐसे व्यक्ति को साधु पुरुष ही मानना चाहिये। वह व्यक्ति अति शीघ्र धर्मात्मा बन जाता है और उसे अखण्ड शान्ति मिल जाती है। हे अर्जुन! निश्चित मानो मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता। अर्थात् पतन न होकर सद्‌गति भाजन बन जाता है। यह मेरी घोषणा है। हे पार्थ! जो

पापयोनि वाले मनुष्य चाण्डालादि है तथा–स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र भी मेरे परायण होने पर परम गति को पा जाते है। जो पुण्यात्मा ब्राह्मण है तथा राजर्षि भक्त है उनके कल्याण में तो शंका ही नहीं है। यहाँ पर भगवान ने स्त्री जाति का अलग से उल्लेख किया है जबकि स्त्रियाँ तो ब्राह्मणि उच्च श्रेणी के जातियों में स्वाभाविक ही परिगणित हो जाती है। फिर उन्हें अलग-अलग श्रेणी दूसरे दर्जे में क्यों सम्मिलित किया गया ? इसका मुख्य कारण यह है कि उनमें देहाध्यास अधिक होता है। देह को ही आत्मा समझने की भूल इनमें ज्यादा होने के कारण इनको तत्व ज्ञान की प्राप्ति में कठिनाई की संभावना रहती है। अनित्य शरीर को नित्य मानकर उसमें आत्म बुद्धि रखना अविद्या का प्रथम लक्षण है। इस सिद्धान्त के अनुसार जो भी व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, इस अविद्या के क्षेत्र में आ जाने के कारण अज्ञान की जड़ में धंस ही जाता है। वस्तुतः सभी जीव अज्ञान के वशीभूत विषाद से ग्रसित है। गीता का प्रारम्भ भी विषाद की निवृत्ति के लिये ही हुआ है। अर्जुन सन्निकट महाभारत युद्ध से होने वाले विनाश के आभास से व्यथित है। अनेक प्रकार की भावनाओं से अभिभूत, वह अपने राजधर्म के कर्तव्य से विमुख होना चाहता है। युद्ध में होने वाले शरीरों के नाश से वह चिन्तित है। ऐसी स्थिति में ही भगवान ने उपदेश देना उचित समझा क्योंकि अर्जुन ने भगवान के चरणों में प्रणाम करते हुये कहा–मै सब प्रकार से आप का शरणागत शिष्य हूँ, मेरे लिये उचित एवं हितकारी आज्ञा प्रदान करें। इसी प्रार्थना के फलस्वरूप भगवान ने अर्जुन को विस्तृत उपदेश दिया है। निष्काम कर्मयोग की साधना तक पहुँचाने के लिये भगवान ने मूलभूत तत्वों का निरूपण गीता मे किया है कर्म तथा इसके क्या-क्या भेद है इसे सविस्तार समझाया है।

योग क्या है ? कैसे करना चाहिये ? युक्त योगी की स्थिति क्या होती है ? संन्यास क्या है ? इन सब प्रश्नों का दिग्दर्शन हम गीता में पाते हैं। किस प्रकार से भगवान कण-कण में विद्यमान है इसे बताने के लिये भगवान ने अपनी विभूतियों का वर्णन कई अध्यायों में किया है विभूतियों को बतलाने का एक ही प्रयोजन है कि साधक भगवान की व्यापकता को समझने लगे और दृढ़ भक्ति का उदय उसके मन में हो जाये। जड़ और चेतन की इस जगत में भूमिका, माया का निरूपण, माया से पार होने के उपाय जैसे विषय गीता के प्रतिपाद्य विषय है। परमात्म-प्राप्ति के अंगभूत दैवी सम्पत्ति का वर्णन भी गीता में हुआ है। तीन प्रकार के यज्ञ, तीन प्रकार के तप एवं तीन प्रकार का आहार भी बतलाया गया है। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि संसार के समस्त दार्शनिक प्रश्नों का उत्तर गीता में दिया गया है। वेद, उपनिषदों का सार रस तो गीता ही है।

गीता का रस वह अमृत रस है जो मोह रूपी मृत्यु को दूर कर योगी को परम चेतन से एक रस कर देता है। जीवन में भी जब मनुष्य दुःखों के भवाटवी में फंस जाता है तो ऐसे समय में गीता ही प्रकाश पुंज बनकर मनुष्य को सच्ची राह दिखाती है। गीता ज्ञान से मनुष्य का मन आत्मबल से भर जाता है। वह यह जान जाता है कि परमात्मा हमारे भीतर बाहर सर्वत्र विद्यमान रहते हुये भी सब के सुहृद है। गीता का आशावाद इस बात से परिलक्षित है। जब भगवान बतलाते है कि योग साधना जैसे महान पुण्य कर्म का फल अवश्य मिलता है। क्योंकि इसका फल अक्षय है। साधना करते-करते यदि साधक का देहपात भी हो जाता है तो भी चिन्ता की बात नहीं। ऐसा योगाभ्यासी शरीरान्त के बाद किंचिंद् कषाय दोषों के होने पर स्वर्ग में बहुत काल तक वास करता है। पुनः मानव शरीर धारण कर

पूर्व यौगिक संस्कारों से जुड़कर पुनः उसकी साधना प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार से गीता साधक को निरन्तर साधना की प्रेरणा और साहस देती रहती है। चित्त में पड़े हुये योग के संस्कार कभी क्षीण नही होते। ध्यान द्वारा उन योगज संस्कारों का परिशोधन करते रहने से तत्व ज्ञान क्रमशः स्फुटतर होता चला जाता है। और एक दिन साधक विवेक प्रज्ञा को पा जाता है। जो संसार वृक्ष के उच्छेदन में समर्थ है। गीता इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन को संवारती है। जीवन व मृत्यु के सारे रहस्यों का उद्घाटन यहाँ पर होता है।

संसार का मूल त्रिगुण संश्रित है। सभी प्राणी इससे बंधे हुये हैं। त्रिगुणातीत अवस्था ही अभय पद-**अक्षय पद** अथवा **ब्रह्म पद** है। साधक को इसी पद पर प्रतिष्ठित करना गीता का लक्ष्य है। गीता के अनुसार यदि कोई किसी भी उपाय से गुणों के दायरे से आगे चला जाता है तो वह मुक्त हो जाता है। गीता के योग ज्ञान का जो ठीक प्रकार से उपाश्रय,ले लेता है वह योगी भगवद् स्वरूप हो जाता है-ईश्वर साधर्म्य प्राप्त कर लेता है। **'सर्गेऽपि** नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च'। ऐसे योगी पुनः नव सर्ग में जन्म नही लेते और न ही उन्हें प्रलय जन्य कष्ट होता है। अर्थात् ऐसे योगी जन्म-मृत्यु की श्रृंखला से सर्वथा पार चले जाते हैं। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये योग साधना के साथ में भगवान ने अपनी अव्यभिचारिणी भक्ति को मुख्य उपाय के रूप में माना है। क्योंकि अव्यभिचारिणी भक्ति से योगी भगवान को पा जाता है। और अमृत पद-अव्यय पद एवं शाश्वत शान्ति उसे स्वतः मिल जाती है क्योंकि ये सब भगवान में ही प्रतिष्ठित है।

हमारे भारत में जितने महापुरुष हुये हैं सभी गीताध्यायी रहे है। आज केवल भारत में नही अपितु समस्त विश्व में गीता ज्ञान की महिमा बढ़ती ही जा रही है। संसार की जितनी भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है दुसरे किसी ग्रन्थ का नही हुआ है। पाश्चात्य मनीषी भी गीता ज्ञान से प्रभावित-हुये बिना नही रह सके। उन्होंने भी मुक्त कंठ से इसकी महिमा गाई है।

गीता भारत की एकता एवं अखण्डता का प्रतीक है। समस्त भारत को गीता ही एक सूत्र में बाँधती है। हिन्दू समाज में घर-घर में गीता पढ़ी जाती है चाहे वह केरल का हो या काश्मीर का अथवा पंजाब का हो या बंगाल का सभी प्रान्त के लोगों में यह सर्वाधिक समादृत ग्रन्थ है। अध्यात्म या धार्मिक समुदाय के लोगों को भी गीता एक घाट पर लाकर मिला देती है। चाहे कोई अद्वैत वेदान्ती हो या वैष्णव शैव हो या शाक्त योगी हो या और किसी मत का अनुयायी सभी लोग समान रूप से गीता का पाठ व मनन करते हैं।

युगों-युगों से गीता भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्राण रही है, और रहेगी। गीता, गंगा एवं गायत्री हमारी संस्कृति के तीन जाज्वल्यमान स्तम्भ हैं। इन्ही पर भारतीय संस्कृति दृढ़ता से टिकी हुई है।

हमारे प्राणधन सद्गुरु योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के तो गीता प्राण ही थे। गीता पाठ को उन्होंने अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाया हुआ था। वे चाहे आश्रम में रहते थे या बाहर योग प्रचार कार्यक्रमों में गीता पाठ एवं सार प्रवचन हमेशा ही होता था। गीता में भगवान ने अपने हृदय को खोल कर रख दिया है। अतः योग साधक को इसका पठन-मनन करते ही रहना चाहिये। यह उपनिषद् योग शास्त्र तथा ब्रह्मविद्या का अभूतपूर्व ग्रन्थ है।

***

जय हो तुम्हारी सहस्राब्द जय हो।

-द्वारका प्रसाद शर्मा-

(१)

कितने ही हमने नये वर्ष देखे,
यह भी तो नव वर्ष की ही तरह है।
न जाने भला जोश क्यों सब मे दिखता,
इसी वर्ष का शोर सब ही तरफ है।।

(२)

सोचा विचारा तो आया समझ में
रहस्य तो कुछ न कुछ है अवश्य।
जैसे हजारों में हम एक ही हैं,
वैसे ही इसका भी वर्चस्व भव्य।।

(३)

सहस्राब्द पश्चात् नयापन संजोये,
हजारवाँ बन नव वर्ष आया।
शती भी यही पार करता है आया,
यही है वही जो सहस्राब्द लाया।।

(४)

मुझे लग रहा है हमारे तुम्हारे,
सभी के लिये ही है सौभाग्य लाया।
प्रभो! आप की जय तथा वर्ष की भी,
साक्षी हमें आपने है बनाया।।

।। ज्ञान - ध्यान - महापूजा ।।

रचयिता -**पं. श्री गुरुशरण दास वैद्य**, नई बस्ती (बुलन्दशहर)

ईश्वर है, तुम्हारे अन्दर है,
तुम्हारा ही है, तुम्हारे लिए ही है,
आप उसके है, वह आपका है,
आप सभी अपने अन्दर के
परमात्मा मे चित्त लगाकर
बाहर भी सर्वज्ञ उसे ही देखते-देखते
अन्तर की निष्ठा को बढ़ाओ-
यही ज्ञान है,
यही प्रेम है, यही योग है।
तुम्हारे चारों ओर व्यापक
भगवान है।

सतत् ऐसा चिन्तन करना ही
भगवत चिन्तन है।
मेरे सहित सब वासुदेव
कुटुम्ब है,
ऐसी धारणा करना ही "ज्ञान" है।
ईश्वर-सत्य, नित्य, निर्लेप
और साक्ष है
ऐसा चिन्तन करना ही 'ध्यान' है।
सभी आत्माओं का आत्म तुल्य
आदर करना ही महापूजा है।

योग साधना में ध्यान का महत्व

-प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा

योग साधना का चरम लक्ष्य प्रकृति-पुरुष विवेक उपलब्ध करना है। चित्त की वृत्तियों के बुहिर्मुखी प्रभाव और चित्त की विषयासत्ति के कारण चित्त के विविध संस्कार मन को सर्वार्थक बना डालते हैं। जब तक सर्वार्थकता-एकार्थकता में परिणत नहीं होती तब तक प्रकृति के गुण-धर्म पुरुष में, पुरुष के धर्म प्रकृति में विम्ब प्रतिविम्ब भाव से सम्प्रक्त प्रतीत होते रहते है। चित्त की वृत्तियों का जब तक अन्तर्मुखी प्रवाह पैदा नहीं होता तब तक प्रकृति-पुरुष विवेक उपलब्ध नही होता। प्रकृति-पुरुष विवेक की उपलब्धि होने पर कर्मचक्र, संस्कार चक्र और तज्जन्य जाति, आयु तथा भोगरूप सुख दुःखात्मक द्वन्द्व जीव को कोल्हू के बैल की तरह शाश्वत दुःखालय मे घुमाता रहता है। चित्त की वृत्तियों का बहिर्मुखी प्रभाव जीवात्मा के ज्ञान, आनन्द तथा उसकी इच्छा और क्रिया शक्ति मे न्यूनता एवं सीमा बद्धता पैदा करता रहता है। वही प्रभाव ध्यानाभ्यास से अन्तर्मुखी बनकर शरीर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि की शक्ति बन जाता है। जिन्हें योग की शब्दावली मे **विभूतियाँ** या **सिद्धियाँ** कहा जाता है।

ध्यान चित्त की अन्तर्मुखी क्रिया है अथवा अन्तर्जगत की यात्रा है। जिसका प्रारम्भ प्रत्याहार से होता है और जिसकी समाप्ति समाधि में होती है। इन्द्रियों को अपने-अपने शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध के विषयों से रोककर प्राणायाम तथा मन के निरोध रूप मंत्र की सहायता से किसी बाह्य अथवा आन्तरिक लक्ष्य पर चित्त की चेतना को केन्द्रीभूत करने से ध्यान की यात्रा का प्रारम्भ होता है। मंत्रजप की शक्ति और प्राणायाम से मन एकमुखी और एकाग्र होने लगता है। उसकी एकाग्रता ही मन की शक्ति है। उस शक्ति की सहायता से ज्ञान और विज्ञान के सभी रहस्यों को जानकर प्रकृति के समस्त विश्लेषण करने की सामर्थ्य प्राप्त कर, परमाणु से महत् पर्यन्त प्रकृति के राज्य पर योगी अपना अधिकार करके पंचभूतो से लेकर त्रिगुणों तक के परिणामों से अपने आप को मुक्त कर कैवल्यावस्था को उपलब्ध हो जाता है। योगेश्वर श्री कृष्ण ने श्री मद्भगवद्गीता मे अनासक्त भाव से जीवन जीने की जीवन पद्धति के लिए योग के अन्तरंग पक्ष धारण-ध्यान-समाधि के प्रयोजन भूत फल का उल्लेख करते हुए कहा है-

'ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्ठाश्म कांचन।।'

अर्थात्-ज्ञान और विज्ञान से अपने को तृप्त करके योगी विकार की स्थिति से परे कूटस्थ तथा जितेन्द्रिय एवं मिट्टी, पत्थर और सोने में तत्वदृष्टि रूप समभाव रखकर आत्म चैतन्य मे नित्यरमण करने वाला जीवन्मुक्त बन जाता है।

रोग, तनाव, चिन्ता, भय, काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष आदि सभी विकार क्लेश मूलक

चित्त वृत्तियों का परिणाम है। जब तक क्लेशों के मूल कारण को क्षीण नहीं किया जाता तब तक प्रचुर धन, विद्या तथा अन्य साधन सम्पत्ति होने पर भी आनन्द, संतोष तथा तृप्ति नहीं हो सकती। असन्तुष्ट और अतृप्त जीवन सृष्टि का विनाशक होता है। उससे न समाज सेवा होती है और न आत्मोत्थान ही। वर्तमान और भावी जीवन का मूल कारण हमारा क्लेश मूलक कर्माशय है। (योग सूत्र २/१२) कर्माशय में सुख और दुःख के बीच जन्मजन्मान्तर के कर्मों के संस्कारों के परिणाम स्वरूप प्रछन्न रूप से विद्यमान रहते हैं। जब तक कारण रहेगा, कार्य होते रहेंगे। उनको छिपेरूप से उभारकर समाधि की योगाग्नि और ज्ञानाग्नि से दग्ध बीजभाव कर देना ध्यान योग का लक्ष्य है। दृष्टा पुरुष और दृश्यस की भिन्नता का प्रकाश बुद्धि में दृढ़ हो जाय तो अविद्या का परिवार शिथिल होते-होते शनैः-शनैः नष्ट हो जाता है। ध्यानयोग का अभ्यास करते-करते साधक ऋतम्भरा प्रज्ञा की भूमिका पर आरूढ़ होकर अपने चेतन स्वरूप को बुद्धि से पृथक् जानने लगता है। अपने स्वरूप में एकनिष्ठ स्थिति हो जाने से ही अनन्त ज्ञान, अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त सामर्थ्य को प्राप्त कर यात्रा का आवर्तन रुक जाता है। स्वरूपोपलब्धि में बाधक व्याधि-आधि और मन की चांचल्य वृत्ति को रोकने के लिये ध्यान ही एकमात्र उपाय है। योग दर्शन में द्वितीय पाद के ग्यारहवें सूत्र में भगवान पतंजलि ऋषि कहते हैं-**'ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः।'** अर्थात्-ध्यान की स्थिति में मनुष्य का चित्त ध्येय विषय से तदाकार होकर अपने अहम् को भुला देता है। अहम् के साथ क्लेशों के रूप में विद्यमान स्थूलवृत्तियाँ हैं। अहम् के विसर्जन से क्लेश भी हट जाते हैं। इसीलिये **'रोगापहतिर्ध्यानम्'** ऐसा भी ध्यान का लक्षण और प्रयोजन शास्त्रकारों ने बताया है। ध्यान से रोगों का उपचार होता है। राग-द्वेष, अस्मिता, अभिनिवेश आदि ही रोग का रूप धारण करते हैं। चित्त जब एक विषयी होकर सतोगुण के प्रवाह में किसी ध्येय वस्तु को अपने चिन्तन का लक्ष्य बनाता है तो ध्याता को ध्येय से जोड़ने वाली ध्यान प्रक्रिया घटित होने लगती है।

अंग्रेजी भाषा में Concentration (एकाग्रता) तथा Meditation (ध्यान) दो शब्द समानार्थी के रूप में व्यवहृत होते हैं। त्राटक, प्राणायाम आदि के द्वारा एकाग्रता आती है। किन्तु ध्यान ध्येय वस्तु-(चाहे बाह्य लक्ष्य भूत हो, चाहे आन्तरिक-देवी देवताओं के रूप या ज्योति अथवा चक्र हों या शरीर के स्नायुमण्डल में चेतना के सोलह केन्द्र हों) के साथ तादात्म्यभाव से घटित होने वाली प्रक्रिया है। ध्यान के लिए कोई लक्ष्य निश्चित करना आवश्यक है। एकाग्रता द्वारा चित्त की वृत्तियों को चारों ओर से समेटकर सूर्य की किरणों की तरह अपने चित्त में लीन करते हुए धारणा करनी पड़ती है। **'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'** यो.सू. ३/१ इस सूत्र में ध्यान की पूर्वावस्था के रूप में धारणा का उपदेश मिलता है। धारणा का तात्पर्य है चित्त को शरीर के अन्दर विद्यमान षोडशाधार अथवा किसी देवी-देवता की मूर्ति में बार-बार अभ्यास द्वारा बांधकर रखना। एक ही विषय में बार-बार चित्त को लगाते हुए उस विषय में ही रोक देने से चित्त एकमुखी बन जाता है। धारणा

जब परिपक्व हो जाती है तो वही ध्यान के रूप में परिणमित हो जाती है। ध्यान जब प्रगाढ़ हो जाता है तो वही समाधि बन जाता है।

धारणा द्वारा चित्त में ध्येय पदार्थ से भिन्न विषय का निरोध हो जाने पर चित्त में ध्येय पदार्थ का तेल की धारा के समान एक ध्येय का ही निरन्तर प्रवाह होते रहना ध्यान कहलाता है। पातंजल योगदर्शन के विभूतिपाद के तृतीय सूत्र में ध्यान का लक्ष्य है- **''तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।''** आत्मा के चैतन्य भाव का चिन्तन करना वेदान्तियों का ध्यान है। योगाभ्यासियों को प्रारम्भ में किसी सगुण साकार स्थूल विषय को चित्त का आलम्बन बनाना पड़ता है। जब स्थूल पदार्थ के आलम्बन में चित्त तदाकार होने में परिपक्व हो जाता है तब निर्गुण, निराकार, शब्द, नाद या ज्योति में मन को ठहराने का अभ्यास किया जाता है। शनैः शनैः निरन्तर अभ्यास करते-करते ध्यान की अवस्था परिपक्व हो जाने पर समाधि की भूमिका आती है। प्रारम्भ में ध्याता, ध्येय और ध्यान-ये तीनों चेतना में अनुभवगम्य होते हैं। ज्यों-ज्यों अभ्यास परिपक्व होता जाता है। ध्यान करने वाला स्वयं को ध्येय पदार्थ में-विलीन करता चला जाता है। द्वितीय अवस्था में ध्यान करने वाले को अपने शरीर, ध्यान करने का स्थान और ध्यान करने के समय का भी बोध नही रहता। केवल ध्यान (मानसिक क्रिया अर्थात् ध्येयाकार, चित्तवृत्ति) तथा ध्येयवस्तु यह द्वैत बोध रहता है। उसकी परिणति अवस्था में न ध्यातास्हतर है और न ध्यान। ध्याता और ध्यान, ध्येय पदार्थ में एक रस तादात्म्य भाव से परिव्याप्त हो जाते हैं। यह एकत्व की स्थिति है। ध्येयवस्तु में विनिवेशित चित्त की इस अवस्था को समाधि की स्थिति कहा गया है। **'तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।'** ३/३ ध्यान की स्थिति में पहले ग्राह्य विषय के अर्थ, ज्ञान और शब्द-इन तीनों की वृत्ति चित्त पर अपना कार्य करती है। अन्य वृत्तियों का अभाव हो जायेगा। अन्य वृत्तियाँ ही हमारे अन्दर सुख-दुःख, पुण्य-पाप और कर्म-संस्कार पैदा करती है। भोग की यह प्रक्रिया समाधि निष्ठा होने पर रुक जाती है। संचित कर्म संस्कार कर्माशय में जन्म जन्मान्तरों तक पड़े रहते हैं। कर्माशय का सम्बन्ध चित्त के साथ है। कर्माशय का उन्मूलन ज्ञान द्वारा नही होता। ज्ञान, अज्ञान को तो दूर कर सकता है किन्तु अविद्या का परिवार ध्यान योग के सतत् अभ्यास से ही नष्ट होता है। जड़-चेतन की गांठ अविद्या के रहते खुल नही पाती। ध्यान योग से एक नया निवृत्ति प्रधान कर्माशय निर्मित होता जाता है जो पूर्व संचित संस्कारों को क्षीण करता रहता है और ध्यान योग के नये संस्कार कर्माशय तैयार नही करते। **'तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कार प्रतिबन्धी'** १/५० इस सूत्र में महर्षि पतंजलि स्पष्ट करते हैं कि ध्यान और समाधि रूप कर्मों से पाप, पुण्य तथा पाप पुण्य से मिले-जुले इन तीन प्रकार के संस्कारों से भिन्न चतुर्थ प्रकार के पाप पुण्य रहित आत्म दर्शन रूप कर्म हुआ करते हैं। जिससे कर्म बन्धन शिथिल होते चले जाते हैं। और ध्यानयोग के संस्कार ऋतम्भरा प्रज्ञा पैदा करके सत्य नारायण का साक्षात्कार कराने में समर्थ हो जाते हैं। जिसके प्रभाव से असत्य भ्रान्तिरूप दुःखात्मक स्थिति उसी प्रकार निवृत्त हो जाती है जिस प्रकार सूर्योदय होने से

अन्धकार दूर हो जाता है। धारणा की स्थिति रहने तक यद्यपि चित्त में निरोधाभिमुख प्रवाहवृत्ति चलते-चलते बीच-बीच में क्लिष्ट संस्कार चित्त को ध्येय लक्ष्य से विचलित कर देते है। जिसे योगदर्शन की भाषा में **'व्युत्थानदशा'** कहा जाता है। ध्यान की दशा में ध्यानारूढ़ चित्त में व्युत्थान संस्कार कम होने लगते है और चित्त का प्रवाह निरोध की ओर अग्रसर होने लगता है। समाधि की भूमिका पर आरूढ़ चित्त में सर्वार्थता का क्षय और एकाग्रता का उदय होने से परिणाम, प्रवाह अथवा परिवर्तन की समाप्ति समाधि दशा में ही होती है। चित्त में परिणाम क्रम की समाप्ति होने से काल का भी अभाव हो जाता है। क्योंकि काल का सम्बन्ध वृत्तियों के उदय और अस्त के बीच में विद्यमान क्षण से है। क्षण काल की सूक्ष्म इकाई है। जब क्षण ही नहीं रहा तो चित्त कालातीत स्थिति में प्रतिष्ठित हो जायेगा। यदि काल का अभाव हो जाय तो देश की सीमायें भी नहीं रहेंगी। धारणा ध्यान-समाधि जब तीनों एक ध्येय विषयक हो जाते है तो उसे योग की भाषा में 'संयम' **(त्रयमेकत्रसंयमः)** कहा जाता है। संयम सिद्ध हो जाने पर योगी अतीत, अनागत, देश काल की सीमा से परे जो कुछ जानना चाहे जान सकता है, करना चाहे कर सकता है। उसके अन्दर **'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुम्'** की सामर्थ्य आ जाती है। जीवभाव की निवृत्ति परमात्मभाव के ऐश्वर्य के विकास से हो जाती है। ध्यान का प्रयोजन आत्म चैतन्य में स्थित होकर ऐश्वर्य को प्राप्त करना है। संयम सिद्ध होने पर सर्वभावाधिष्ठा तृप्त तथा सर्वज्ञातृत्व शक्ति आ जाती है। इस प्रकार ध्यानयोग ही वह विज्ञान है जिससे आत्मा का खजाना **शान्ति, ज्ञान और आनन्द** की उपलब्धि होती है। ध्यान द्वारा साधक समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त सत्ता को अपने अन्तःकरण में ही प्राप्तकर कृतकृत्य हो जाता है। ध्यान द्वारा निर्मित कर्माशय से जनम और कर्म तथा मृत्यु दिव्य बन जाते हैं। जीवन की गति और मति सुधर जाती है। आधि व्याधियाँ सदा के लिए दूर हो जाती है। जिस प्रकार प्लास्टिक सर्जरी आदि उपचारों से शरीर की विकृतियाँ तिरोहित हो जाती है उसी प्रकार ध्यान से उत्पन्न चित्त संस्काराशय से रहित हो जाता है। **'तत्र ध्यानजमनाशयम्'**-यो.द.४/६ सूत्र में महर्षि पतंजलि इस तथ्य का उद्घाटन करते है। अस्मितानुगत समाधि में चित्त व्यष्टि चेतना से चलकर समष्टि चेतना के साथ एकाकार हो जाता है। **अहम् ब्रह्मास्मि** का भाव ओत-प्रोत हो जाता है। उस अवस्था में अपने जन्म जन्मान्तरों के सभी कर्मों को निःशेष करने के लिए योगी अनेक चित्त निर्माण कर एक साथ सारे कर्मों का भोग कर निर्बीज समाधि की ओर अग्रसर हो जाता है। निर्माण चित्तों के संस्कार प्रवृत्ति मूलक जन्म, आयु, जरा, व्याधि, मृत्यु के नये संस्कार नहीं बना पाते। योगी संस्कार चक्र से पूर्णरूपेण मुक्त हो जाता है। ध्यान योग के विज्ञान से ही यह सम्भव है, ज्ञान से नहीं। इसीलिए योग को समस्त विज्ञानों में श्रेष्ठ विज्ञान माना गया है। यही जीवन का चरम पुरुषार्थ है।

※ ※ ※

परमार्थ का सबसे बड़ा विघातक- परदोष-दर्शन

(पं. कृष्ण दत्त जी भट्ट)

बाईबल में आता है-'जज नॉट-तू किसी का फैसला न कर।' कौन सही है, कौन गलत ? किसका कसूर है, किसका नहीं- इसका फैसला देने वाला तू कौन ? किसने कौन काम कब किया, कैसे किया, क्यों किया, उसे करते समय उसका क्या इरादा था ?-इसका तुझे ठीक-ठीक पता कैसे चलेगा ? तू अगर गलत फैसला देगा तो उसका दोषी कौन होगा ? इसलिए सीधा रास्ता है-'जज नॉट-किसी का फैसला न कर।

यही कारण है कि ईसाई-धर्म में जज-न्यायधीश-फैसला देने वाले का पेशा अच्छा नही माना जाता। एक बार अमरिका में एक शोध किया गया-'भले पड़ोसियों के विषय में।' उसमें कुछ लोगों ने फैसला देने वाले के धंधे को बहुत बुरा बताया। एक सीधी-साधी महिला ने तो यहाँ तक कह दिया-'मुझे शर्म लगती है कि मेरा बेटा वकील है।' एक ने कहा-'वकील और जज पाखंडी है। वे भ्रष्ट धनिकों के और चोरों, बदमाशों तथा अपराधियों के एवं राजनीतिज्ञों के भाड़े के टट्टू है।'

किसी ने कहा-'वे प्रभू के आदेश के विपरीत ईंट का बदला ईंट से देना चाहते है। वे लोगों को जेल भेज कर ऊपर उठाने के बजाय नीचे गिराते है। वे ईसा के आदेश के विपरीत आचरण करते है. ....'

मतलब, जज का व्यावसायिक या सामाजिक रूप भले ही कुछ लोगों की दृष्टि में अच्छा है, ऊँचा है, सम्माननीय है, पर कुछ लोगों की दृष्टि मे बुरा है, बहुत बुरा।

मुस्लिम शासन-व्यवस्था मे फैसला देने का काम काजी करता था। उस समय न्यायाधीश का दायित्व काजी के सुपुर्द था। 'काजी' उसे कहा जाता था, जो शरा (एक मुस्लिम कानूनी व्यवस्था) के अनुसार मामलों का निपटारा करता था, लोगों के कजिया-झगड़ों का फैसला देता था, जिसमें यह निर्णय करता था कि कसूर किसका है, गलती किसकी है, दोष किसका है और इसे क्या दण्ड मिलना चाहिये। इस प्रकार काजी होता था सरकारी अफसर। सरकार उसे तैनात करती थी तनख्वाह देती थी। सरकारी पुलिस और फौज उसके फैसलों को अमल में लाने में मदद करती थी।

छोटा काजी मुंसिफ, बड़ा काजी चीफ जस्टिस होता था। वकील उसके सहायक-फैसला करने में सहायता करने वाले होते थे।

काजी के प्रति समाज में सम्मान था, आदर था, पर साथ ही काजी का काम जनता की नजरों में अच्छा नहीं था। कारण स्पष्ट था-काजी का फैसला सही भी हो सकता था, गलत भी, उचित भी हो सकता था, अनुचित भी। काजी धोखे में आ सकता था, वह डर, भय, प्रलोभन और पक्षपात का भी शिकार बन सकता था।

यह बात तो हुई उन लोगों की, जो जज के, काजी के, वकालत के पेशे में काम करते हैं। जिससे उनकी रोजी चलती है। पर जो लोग इस पेशे में नहीं हैं, फिर भी जो मेरी तरह इस पेशे को शौकिया अपनाये हुए है, उनका हाल मुझसे पूछिये।

आप जज या काजी है कि नहीं, मुझे पता नहीं। मै तो अपनी बात जानता हूँ वकालत की एल-एल०बी० या एल-एल०एम० परीक्षा, मुंसिफी की परीक्षा-या ऐसी कोई भी परीक्षा पास किये बिना भी मै जज-काजी फैसला देने वाला हूँ। स्वेच्छा प्रेरित, स्वैच्छिक स्वतः प्रवृत, खुदराजी; किसी ने मुझे जज काजी नियुक्त नही किया।

कोई मुझे फैसला देने के लिये तनख्वाह नही देता, 'आनरेरियम' नही देता, दक्षिणा या शुकराना नही देता, फिर भी मै फैसला देने वाला बन बैठा हूँ। आनरेरी-स्वेच्छाप्रेरित। आप पूछेगे कि 'आखिर मुझे काजी-जज या फैसला देने वाला बनने का यह शौक क्यों चर्राया ? क्या वजह है, क्या कारण है, जो मैने खुद-ब-खुद यह पेशा अपना रखा है ? शहर के अंदेशे से मै क्यों दुबला हुआ जा रहा हूँ ? घर के लोग हों या बाहर के, सगे सम्बन्धी हों या पास-पड़ोसी, नजदीकी-लोग हों या दूर के, दफ्तर के लोग हों या कारखाने के, परिचित हों या अपरिचित सभी के सम्बन्ध में टीका करना, सभी की आलोचना करना, सभी में दोष निकालना, सभी पर 'रिमार्क' करना क्यों मैंने अपना धंधा बना लिया है ?'

क्या जवाब दूँ मै आपके इस सवाल का ?

मै तो सिर्फ इतना जानता हूँ कि जज का-काजी का-फैसला देने वाले का काम मुझे भी जान से प्यारा है। दूसरों की टीका करना मुझे जी जान से प्यारा है। दूसरों की टीका करने में मुझे बड़ा रस मिलता है। आनन्द मिलता है। यह काम मुझे पसन्द ही नहीं, बहुत पसंद है। सच मानिये, मुझे लगता है कि दूसरों की नुक्ता चीनी नहीं करूँगा तो मेरा खाना ही हजम न होगा। मेरा स्वभाव ही बन गया है-पराये दोषों को खोज-खोजकर निकालना उसके बाल की खाल निकालना और फिर भरपूर नमक-मिर्च मिलाकर उनका रात-दिन प्रचार करना।

संत विनोबा ने कहीं एक पुरानी कहानी पढ़ी थी। आप भी सुन लीजिये, वह कहानी।

'दुनिया पैदा करें'-ब्रह्माजी की यह इच्छा हुई। इसके मुताबिक कार्य शुरू होने वाला था, लेकिन पता नहीं कैसे उनके मन में आया कि अपने कामों में भला-बुरा कहने वाला कोई और रहे तो बड़ा मजा आयेगा। उन्होंने एक तेज-तर्रार टीकाकार गढ़ा। उसे यह अधिकार दिया कि 'अब मै जिसे गढ़ूँ, उसकी जाँच तू कर।,

इतनी तैयारी के बाद चतुरानन ने अपना कारखाना चालू कर दिया, इधर वे एक-एक चीज गढ़ने लगे, उधर टीकाकार हर चीज में कोई न कोई कमी निकालने लगे।

'हाथी ऊपर नहीं देखता।'

'ऊँट ऊपर ही देखता है।'

'गदहे में तेजी नहीं है।'

'बंदर में शान्ति नहीं है।'

यों टीकाकार अपनी टीका के तीर छोड़ने लगा—अपनी उपयोगिता साबित करने लगा। चतुरानन बेचारे चकरा उठे।

आखिर उन्होंने अपनी सारी अक्ल खर्च कर अपना सबसे नायाब श्रेष्ठ नमूना पेश किया—मनुष्य, इनसान।

लेकिन टीकाकार ने उसमें भी एक चूक निकाल दी—'इसकी छाती में खिड़की नहीं। खिड़की होती तो सब लोग इसके विचार समझ लेते।' बुरी तरह खीझकर ब्रह्मा बोले—तुझे मैंने गढ़ा, यही मेरी चूक हुई। चल, मैं तुझे शंकर जी के सुपुर्द कर दूँ।'

संत विनोबा कहते हैं कि 'इस कहानी में शंकर की एक ही गुंजाइश है। वह यह कि टीकाकार शंकर जी के सुपुर्द हुआ नहीं दीखता। शायद ब्रह्माजी को उस पर दया आ गई हो या शंकर जी ने अपनी शक्ति का प्रयोग न किया हो, तभी तो आज उसकी जाति बहुत फैली हुई पायी जाती है।' परदोष-दर्शन के विशेषज्ञों को भारी संख्या में यत्र-तत्र-सर्वत्र आप देख भी सकते है।

तो चतुरानन की यह चूक हम आनरेरी-स्वेच्छाप्रेरित जजों-काजियों-फैसला देने वालों के लिए बहुत बढ़िया साबित हुआ। हमारी बिरादरी आज सारी दुनिया में फैली हुई है। अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं ही तक सीमित नहीं है घर-बाहर, सब जगह उनका बोलबाला दीखता है।

पिताजी, माताजी, श्रीमतीजी, बहनजी, भाईजी, बेटाजी, बेटीजी, बहुजी, ननदजी, देवरजी, घर के छोटे-बड़े सभी लोगों पर इस हवा का ऐसा असर है कि जिसे देखिये, वही स्वेच्छाप्रेरित जज-फैसला देने वाला-काजी बना बैठा है। टीकाकार और आलोचक बना बैठा है। तू नालायक है। तुझमें यह दोष है। तू डूब भी नहीं मरता। तूने हमारे कुल में दाग लगा दिया। तूने माँ-बाप की प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। रोज ऐसी अनेक बात हम सुनते है। एक-दूसरे के खिलाफ सुनते है सुबह से शाम तक, शाम से सुबह तक ऐसी ही बातों की विविध रूपों में पुनरावृत्ति होती रहती है। शायद ही कोई घर बचा होगा ऐसी टीका टिप्पणियों और आलोचनाओं से।

बाहर झाँकिये। बगल में झाँकिये। पास पड़ोस में नजर दौड़ाइये। सर्वत्र जज-फैसला करने वाले लोग ऐसा ही इंसाफ करते मिलेंगे। सड़क हो, चौराहा हो, गंगाजी का किनारा हो, पार्क हो, मैदान हो या स्टेशन हो जहाँ भी दो चार लोग जुटे हों इनकी कार्यवाही तत्काल शुरू। घरवालों की टीका से यदि फुरसत मिली तो बाहर का सारा आलम पड़ा हुआ है—

इसमें यह दोष, उसमें वह दोष, इसे यह करना चाहिये था उसे वह करना चाहिये था। कुछ नहीं

तो आम-चर्चा का विषय राजनीति तो है ही; इसके सम्बन्ध में टीका-टिप्पणी और आलोचना के आनन्द का जजमेन्ट के भावातिरेक का, फिर कहना ही क्या ?

किसमें कौन सा दोष है, इस बात का पता स्वेच्छा प्रेरित जजों-काजियों को सबसे पहले लग जाता है। दूल्हा मण्डप में पहुँच भी नही पाता कि वधू की सहेलियों के पास उसके रंग-रूप, हाव-भाव दोष-गुण आदि का कच्चा-चिट्ठा पहले पहुँच जाता है। जिसके आधार पर उसका विस्तृत विश्लेषण भी कर लिया जाता है।

और तमाशा तो यह कि ऐसे जजों को-काजियों को गुण बहुत कम दिखते है दोष अधिक दीखते है। कभी-कभी तो गुण भी दोष ही दिखाई पड़ते है। संत विनोबा कहते है और ठीक ही कहते है कि मनुष्य के मन की रचना कुछ ऐसी चमत्कारपूर्ण है कि दूसरे के दोष उसको जैसे उभरे हुए साफ दिखाई देते है, वैसे गुण नही दिखायी देते। अग्नि का धुआँ, सूर्य की रात अथवा चन्द्र का कृष्णपक्ष देखने वालों का यह सम्प्रदाय संक्रामक रोग की तरह बढ़ रहा है। पुतली काली होने की वजह से या काले रंग मे अधिक आकर्षण होने की वजह से किसी का भी काला पक्ष हमारी आँखों मे जैसा सूझता है, वैसा उज्ज्वल पक्ष नही सूझता।'

हम लोग स्वेच्छा प्रेरित जज-फैसला देने वाले लोग काला चश्मा लगाने के आदी है, भले ही वह आपको हमारी आँखों के ऊपर चढ़ान दीखे। हम जिधर देखते है हमे गुण दीखते ही नही, दोष ही दीखते है।

यह प्रदोष-दर्शन और परदोष-कथन इतना जनप्रिय होते हुए भी व्यवहार और परमार्थ के लिए-अपने लिये और समाज के लिए घातक ही घातक है। जिस विचार का जिस भाव का हम बार-बार चिन्तन-मनन करते है, वह हमारे स्वभाव का अंग बन जाता है।

भगवान ने कहा ही है–

'ध्यायतो विषयान् पुंसः सगंस्तेषूपजायते।' (गीता २/६२)

परिणाम यह होता है कि लोगों में जिन दोषों का होना हम देखते है– वे उनमें है कि नही, भगवान जाने। पर हममें तो वे दोष धीरे-धीरे जमने लगते है और हमारा परमार्थ उनके समक्ष कपूर की भाँति उड़ने लगता है। अन्त मे हमारा जीवन दोषमय ही हो जाता है। अतएव परमार्थ के पथिक को, अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाले को परदोष-दर्शन, परदोष-चिन्तन, परदोष-कथन, परदोष श्रवण से सदा बचना चाहिये। परदोष-दर्शन-कथन के कीटाणु टी०बी० और कैंसर के कीटाणुओं से भी अधिक घातक है, भयावह है।

***

किमस्ति योगः

(एक विंशतिः श्रृंखला)

रचनाकार : द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ।

अब तक २४ श्रृंखलाओं में **'समाधि पाद'** तथा **'साधनपाद'** में सन्निहित सूत्रों की विधिवत् व्याख्या की जा चुकी है। समाधिपाद, वास्तव में, उत्तम संस्कारयुक्त साधकों के निमित्त है तथा साधन पाद मध्यम साधकों को योग के बहिरंग साधन, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहारों का मार्ग दर्शन करवाता है। विभूतिपाद के इस तीसरे पाद में महर्षि पतंजलि के अन्तरंग साधनों, धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों को एक ध्येय में लगाना-अर्थात् संयम से ही संभव है।

विभूतिपाद के सूत्रों की व्याख्या करने से पूर्व मंगलाचरण आवश्यक है, अतः उस निमित्त श्री गुरुदेव का स्तवन व उनके चरणारविन्दों में नमन किया जा सकता है।

(१) ध्यानं चरणयोः कृत्वा, श्री गुरोश्च महाप्रभोः।
आरंभे योगसूत्राणि, भूयोऽहं पूर्वरीत्यैव।।

श्री गुरुदेव तथा महाप्रभु के चरणों का ध्यान करते हुए मैं पूर्ववत् ही पुनः योगसूत्र को प्रारम्भ कर रहा हूँ।

(२) यन्नामस्मरणादेव, योगः संचरते हृदि।
कोटिशोनतयः सन्ति, श्री चन्द्रमोहनाय नः।।

जिन गुरुदेव के नाम के स्मरण से ही हृदय में योग का संचार हो जाता है, ऐसे सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के निमित्त हमारे कोटि-कोटि नमन है।

(३) निम्नांकितानि सूत्राणि, उद्धृत्य योगशास्त्रतः।
व्याख्यास्ये पूर्वविधिना, श्री गुरूणां प्रसादतः।।

योग दर्शन शास्त्र के विभूति पाद से निम्नांकित सूत्रों को उद्धृत करते हुए श्री गुरुदेव के ही प्रसाद से पूर्व विधि से उनकी व्याख्या करूँगा।

–देश बन्धश्चित्तस्य धारणा।
–तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।
–तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।
–त्रयमेकत्र संयमः।
–तज्ज यात्प्रज्ञालोकः।

(४) एकै कं सूत्रमालम्ब्य, हिन्दी भाषार्थ संयुतम्।
प्रवक्ष्ये पूर्वरीत्यैव, स्वान्तः करण शुद्धये।।

एक-एक सूत्र लेकर, हिन्दी भाषानुवाद सहित, अन्तःकरण की शुद्धि के लिये मैं पूर्व की भांति ही वर्णन करूँगा।

–सूत्रं तदर्थ सहितञ्च – **देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।**

(५) कस्मिंश्चिदेक देशेहि, चित्त वृत्तेस्तु स्तम्भनम्।
बहिर्वाऽभ्यन्तरे देहे, धारणेत्यभिधीयते।।

चित्त के वृत्ति मात्र से किसी एक देश में ठहरने को (बाहर या शरीर के अन्दर कहीं भी) धारणा कहते हैं।

(६) देशबन्धेन तात्पर्यं, यत् वृत्तीश्चेतसस्तु याः।
विषयेभ्यः समाहृत्य, एकदेशे समाहिताः।।

देशबन्ध से यह तात्पर्य है कि चित्त की वृतियों को विषयों से हटाकर एक ही ध्येय विषय पर वृत्तिमात्र से ठहराया जाय।

(७) चित्त वृत्तिं शरीरस्य, भागे तु कस्मिंश्चिदपि।
नाभिचक्रे हृत्कमले, नासाग्रे भृकुटौ च वा।।
(८) जिह्वाया अग्रभागे वा, भागेष्वेतेषु योजयेत्।
खौ वा शशिनि वापि, ध्रुवादौ योजनं भवेत्।।
(९) अथवा स्याच्च कस्मिंश्चित्, देवमूर्तौ तथा च वै।
एवं बाह्ये पदार्थेऽपि, ध्येये वृत्तिं निधापयेत्।।
(१०) चित्तवृत्तिस्तदैवं सा, स्वीयध्येये निरन्तरा।
प्रकाशते यदा लग्ना, तत्स्वरूपं हि स्पष्टतः।।

चित्तवृत्ति को शरीर के किसी भी भाग में, यथा नाभिचक्र, हृदय-कमल, नासिका का अग्रभाग, भृकुटि, जिह्वा का अग्रभाग आदि स्थानों में, अथवा सूर्य, चन्द्र, ध्रुव आदि में अथवा किसी देवमूर्ति एवं किसी भी बाहर के पदार्थ में अन्य सभी विषयों से हटकर एक ही ध्येय विषय पर वृत्तिमात्र में ठहराया जाय। इस प्रकार चित्तवृत्ति ध्येय के विषय में समान रूप होकर स्थिर रूप में स्वरूप का प्रकाश करने लगती है।

–सूत्रं तदर्थ सहितञ्च–**तत्र प्रत्ययैकता ध्यानम्।**

(११) चेतसः स्थापनं यत्र, तत्र वृत्तेर्निवेशनम्।
नैरन्तर्येण करणं, ध्यानमाहुर्विचक्षणाः।।
(१२) तच्चित्त त्वं तन्मयत्वं, तद्रूपत्वं तथैव हि।
भ्रमरः कमले यद्वत्, शेते तस्मिन्निमीलिते।।

जहाँ चित्त को ठहराया जाय, उसी में वृत्ति का एक सा बना रहना **ध्यान** है। चित्त की वृत्तियाँ ध्येय में ऐसी तन्मय और तदाकार हो जायें जैसे भौंरा कमल पुष्प में तन्मय होकर बेसुध हो जाता है और सूर्यास्त में कमल का मुख बन्द होने पर स्वयं बन्द हो जाता है।

–ननु समाधेः स्वरूपं **विवृणोति महर्षिरग्रिमे** सूत्रे।

अब अगले सूत्र में महर्षि पतंजलि समाधि का रूप बताते हैं–

–सूत्रं तदर्थ सहितञ्च –तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

(१३) यस्यां स्थित्यां भवेन्मात्रं, प्रतीतिर्विषये ध्येये।
स्वरूपं चेतसः शून्यं, **ध्यानमेव** समाधिस्तत्।।

केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है, चित्त का अपना स्वरूप शून्य हो जाता है वही (ध्यान ही) समाधि कहलाता है।

(१४) **ध्याता ध्यानं** ध्येयमेव, **त्रीण्येतानि भवन्ति हि।**
ध्यायते विषयं **ध्याता, वेत्ति** ध्यानं **करोति** सः।।

ध्याता अर्थात् ध्यान करने वाला, ध्यान, चित्त की वह वृत्ति है जिसके द्वारा विषय का ध्यान होता है, ध्यान का विषय ध्येय, जिसका ध्यान किया जाय। साधक जब ध्यान करता है तब उसको यह बोध रहता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ। अर्थात् ध्याता, ध्यान व ध्येय ये तीनों अलग-अलग भाव होते हैं।

(१५) ध्यानं वै **कुर्वतस्तस्य**, ध्येयं **चित्तं** हि **विद्यते।**
अभावः स्व **स्वरूपस्य, भावस्तावन्न जायते।।**
अवस्था यां तदा **तस्यां, अहं** ध्यानं **करोमीति।।**

किन्तु ध्यान करते-करते चित्त ही ध्येय रूप में परिणित हो जाता है। अपने रूप का अभाव-सा हो जाता है और यह भाव नहीं रहता कि मैं ध्यान कर रहा हूँ।

(१६) **प्रतीतिस्तत्स्वरूपस्य**, ध्येयस्य **विषयस्य** हि।
विद्यते केवलं तावत्, तद् ध्यानं तु समाधिरिति।।

ध्यान की अवस्था में केवल ध्येय विषय के स्वरूप का ही भाव होता है। तब उस ध्यान को ही समाधि कहते हैं।

(१७) **अवस्थायां समाधेस्तु,** ध्येयमात्रं हि **भासते।**
संप्रज्ञातश्च योगेऽयं, **वा समाधिः सबीजा सा।।**

समाधि की अवस्था में केवल ध्येय मात्र ही भासित होता है। इसको संप्रज्ञात योग अथवा सबीज समाधि जानना चाहिये।

(१८) एतस्यामवस्थायां वै, संसार विषयास्तु ये।
बीजरूपेण वृत्तौ ते, विद्यन्ते तु तथापि हि।।
(१९) यावद् भवेदभावस्तु, वृत्तेर्ध्येयाकृतेरपि।
असम्प्रज्ञात योगोऽसौ, समाधिर्बीजहीना वा।।

समाधि अवस्था में केवल बीजरूप में संसार के विषय बीज ध्येयाकार वृत्तिरूप में मौजूद रहता है। जब ध्येयाकार वृत्ति भी न रहे तब उसको **असम्प्रज्ञात योग** एवं **निर्बीज समाधि** कहते हैं।

–एतदनन्तरं किं स्वरूपं संयमस्य तदेव वर्ण्यते महर्षिणा सूत्रे त्वग्रिमे।

अब संयम कहते हैं।

–सूत्रं तदर्थ सहितञ्च **–त्रयमेकत्र संयमः।**

(२०) धारणायाश्च, ध्यानस्य, समाधेरेकतो यदा।
एकस्मिन्नेव विषये, योगः संयम उच्यते।।
(२१) सिद्धे जाते संयमस्य, उदिताः सिद्धयस्तदा।
प्रभावस्तत्तत्संयमस्य, अग्रे वर्ण्यस्वदेव हि।।

धारणा, ध्यान, समाधि-इन तीनों का समुदाय एक ही विषय में होने से, योग शास्त्र के प्रवर्तक, उसको संयम कहते हैं। यह संयम इसलिये कहा जाता है कि इन तीनों के सिद्ध होने से अनेक प्रकार की सिद्धियों का उद्भव अथवा प्राकट्य प्रारम्भ हुआ करता है, जिनका वर्णन हम आगे देखेंगे।

–सूत्रं तदर्थ सहितञ्च–**तज्जयात्प्रज्ञालोकः**

(२२) जयात्तस्य संयमस्य, प्रज्ञालोकः प्रभासते।
मत्यामलौकिका शक्तिः, जायते तदनन्तरम्।।
(२३) विभूतयोऽनेकविधाः, सिद्धयन्ति तत्र तत्र ह।
अन्ततस्ताः परिणताः, विवेकख्याति-कैवल्ये।।
(२४) योगदर्शन शास्त्रस्य, आद्ये पादे तु वर्णिता।
प्रज्ञा ऋतम्भरा नाम्नी, भगवता श्री महर्षिणा।

उस संयम के जीतने से समाधि प्रज्ञा (समाधि-ज्ञान) प्रकाश होता है। तभी अनेक प्रकार की विभूतियाँ सिद्ध होने लगती हैं। अन्त में विवेक ख्याति (कैवल्य) की प्राप्ति होती है। इसी को पहले पाद में ऋतम्भरा प्रज्ञा नाम से वर्णन किया है श्री भगवान् पतंजलि महाराज ने।

(२५) विरामं लेखनस्यास्य, यास्ये साम्प्रतमत्र हि।
लिखितं सकलं कृपया, श्री गुरूणां प्रसादतः।।

इस लेख को अब यहीं विराम दिया जा रहा है। श्री सद्गुरुदेव के प्रसाद-प्रताप से ही यह सब कुछ लिखा गया है। जय-जय गुरुदेव।

गीता जी में योग ही योग

–स्वामी केशवाचार्य

श्री मद्भगवद्गीता के अन्तिम श्लोक में भगवान् "योगेश्वर" कहे गये हैं। जिन मंगलमय शब्दों में भगवान् का वर्णन किया जा सकता है, ऐसे सब शब्द गीता के दसवें अध्याय में अर्जुन के **'परं ब्रह्म परं धाम'** आदि भगवदा वाहन में बड़े ही आश्चर्य जनक ढंग से एकत्र हो आये हैं। इस आह्वान स्तुति से अधिक उदात्त या आकर्षक स्तुति सम्पूर्ण साहित्य भर में और कही भी नही है। इस स्तुति का जो-जो कुछ अर्थ है व इससे जो-जो कुछ ध्वनित होता है, वह सब एक **'योगेश्वर'** शब्द में आ जाता है। गीता के इस 'योगेश्वर' शब्द की व्याख्या करना जितना कठिन है, उतना ही गीता का योग क्या है- यह बतलाना कठिन है। दोनों ही काम कठिन ही नही अपितु असम्भव भी है। तथापि दोनों को जानने का यत्न करना होगा। इसलिए नहीं कि यह प्रयास सफल होगा, बल्कि इसलिए कि इस प्रयास में भी एक अद्भुत आनन्द है।

'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।। (५/२२)
अनित्यमसुखमं लोकमिमं प्राप्य भजस्वुमाम्।। (९/३३)
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्।। (१३/८)
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।। (२/२७)

परन्तु आत्मा तो अनन्त और सनातन, मुक्तस्वभाव और आनन्द स्वरूप है। इसी दिव्य प्रतिज्ञा के साथ गीता आरम्भ होती है और तब देहधारी जीवों की जो दो प्रकार की जीवन की धाराएँ है, एक संसृति से संसृति की ओर ही ले जाने वाली निम्न धारा और दूसरी संसार के पार पहुँचाने वाली ऊर्ध्वगामिनी धारा-उनका और उनके कारण गुणों का और फिर गुणों के कारण-स्वरूप अविद्या का विचार होता है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि गीता के-

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोनिर्विण्णचेतसा।। (६/२३)

इस श्लोक में परम योगेश्वर श्री कृष्ण ने योग का सूक्ष्मातिसूक्ष्म सार भर दिया है। हमारे देह युक्त जीवन में दुःख का संयोग होता है। इसका जो वियोग है वही योग है। दुःख के संयोग के वियोग का नाम ही योग है। उसी योग में आत्मा अपनी दिव्यता के साथ स्थित होता है। भगवान उस स्थिति का इस प्रकार वर्णन करते हैं-

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।। (६/२१/२२)

वह अनुभूति अर्णनीय आनन्द की स्थिति है। इन्द्रियों की वहाँ तक पहुँच नही है। केवल बुद्धि के द्वारा ही उसका ग्रहण हो सकता है। वह परा गति है। सुख दुःख के सर्वथा परे है।

योग शब्द युज् (समाधौ) से प्रायः साधा जाता है। इसका अर्थ है मिलन या योग अर्थात् दुःख से वियोग और आनन्द के साथ योग। दार्शनिक भाष्यकार प्रायः अपनी पसन्द या प्रकृति के अनुसार गीता में किसी न किसी विशिष्ट एक देशीय योग की ही प्रधानता बताते है। परन्तु श्री कृष्ण ने इस प्रकार का कोई एक देशीय योग नही बताया है। जो योग उन्होंने बताया है वह आरम्भ में दुर्गम और क्लेश कर प्रतीत हो तो भी वह शीघ्र ही सुगम और सुखकर हो जाता है। और फ़िर अन्त तक ऐसा ही रहता है। यही कारण है कि इस लोक में **'द्विविधा निष्ठा'** (३/३) बतलाते हुए यह भी कह देते है कि दोनों मार्ग पहुँचते है एक ही स्थान को। साथ मे भगवान यह भी कहते है कि कर्म की समाप्ति आत्मस्थिति में होती है।

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। ४/३३

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।।४/३७

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।। ४/३८

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।

योगयुक्तो मुनिब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।। ५/६

कर्तव्यकर्म से कोई कच्चे मन के साथ न भागे। मन जब परिपक्व होगा तब कर्म आप ही उससे छूट जायेगा परिपक्वता ही मुख्य है-

नकर्माणि त्यजेद्योगी कर्मभि सत्यज्यते ह्यसौ।

भगवान बारम्बार गीता की इस मुख्य शिक्षा पर जोर देते है कि भगवत्प्राप्ति के साधन सार मर्म वह अनासक्ति भक्ति है जिससे कर्म नैष्कर्म्य को प्राप्त होता है। यज्ञ, दान और तप रूप कर्म चित्त शुद्धि के साधन है और सच्चा त्याग संगत्याग और फलत्याग है-

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। ३/४

न ह्यसन्नयस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन।। ६/२

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेवतत्।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।१८/५

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।।

संग त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्विको मतः।। १८/९

इससे यह मालूम होता है कि गीता का योगमार्ग आत्म मिलन, आत्मानुभव और आत्म रतिका मार्ग है। और यह सम्पूर्ण मार्ग एक ही है। वही आनन्द का मार्ग है। उन लोगों से मेरा मतैक्य नही है जो कर्मयोग को कनिष्ठ और संन्यास योग को श्रेष्ठ बताते है। अथवा जो यह कहते है कि कर्मयोग मे जो आनन्द है उससे संन्यासयोग का आनन्द श्रेष्ठ कोटि का है। हाँ, इस बात को मै अवश्य मानता हूँ कि **"स्वरूपेवस्थानम्"** (आत्म स्वरूप मे स्थित) होना अनुभव और आनन्द की पराकाष्ठा है। गीता का यह वचन है कि– कर्मयोग मार्ग मे भी शान्ति और आनन्द की प्राप्ति है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।२/६४
प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते। २/६५
विहाय कामान्य: सर्वान् पुमांश्चरति नि: स्पृह:।
निर्ममो निरहंकार: स शान्तिमधिगच्छति।।२/७१
युक्त: कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्। ५/१२
त्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् (१२/१२)

कर्मयोग का विवेचन करते हुए श्री कृष्ण ने इस शब्द के दो और अर्थ प्रकट किये है। एक है, **"समत्वं योग उच्यते"** सिद्धि असिद्धि मे सम रहना योग है। दूसरा– **"योग: कर्मसु कौशलम्"** कर्म मे जो कौशल है वह योग है। यह कौशल क्या है ? कौशल है वही अनासक्ति और भक्ति जिनसे बन्धनकारक कर्म मोक्षदायक कर्म हो जाता है। और कर्म ज्ञान बन जाता है।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिण:।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ता: पदं गच्छन्त्यना मयं ।। २/५१
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धन:।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंग समाचर।। ३/९
त्यक्त्वा कर्मफलासंग नित्यतृप्तो निराश्रय:।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति स:।।४/२०
आत्मवन्तं न कर्माभि निबध्नन्ति धनंञ्जय ।। ८/८९
सर्व भूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपिन लिप्यते।। ५/६
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संग व्यक्त्वा करोति य:।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। ५/१०

गीता के 'योग' शब्द के अर्थ पर सामान्य विचार और कर्म योगान्तर्गत 'योग' का विशेष विचार हुआ। कर्म योग चित्त शुद्धि का साधन है। भगवान श्री कृष्ण के कर्मयोग मे पांतञ्जलि योग दर्शन के वे यम और नियम सांगोपांग आ जाते है, जिनसे 'चित्त प्रसादन' होता है। यम नियम से यह

कमयोग अधिक व्यापक है और फिर इसमें यह विशेषता है कि इसमें ईश्वरार्पण बुद्धि है। जो योग सूत्रों में नही है। चित्त शुद्धि से चितैकाग्रय होता है। चितैकाग्रय योगी अन्तः सुख और अन्तर्ज्योति को प्राप्त करते है।

योऽन्तःसुखोऽन्तराराम स्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ५/२४

ऐसे पुरुष को श्री कृष्ण योगी कहते हैं। जो तपस्वियों, ज्ञानियों और कर्मियों से श्रेष्ठ है, और इसलिए अर्जुन को उपदेश है कि-**'तस्माद्योगी भवार्जुन।'** (६/४६) यह कठिन राजयोग मार्ग जिससे सगुण ब्रह्म की प्राप्ति होती है। गीता के आठवें अध्याय में वर्णित है। उससे अर्जुन चकित, स्तम्भित हो जाता है। इसलिए भगवान सुगम सुखपूर्वक साध्य भक्ति मार्ग बतलाते है और इसी को **राजविद्या** कहते है। इस विद्या का सबको अधिकार है। इसमें स्वयं भगवान ही हमारे ध्येय और ६ येय के पास पहुँचने वाले मार्ग दर्शक है। भगवान भक्ति योगी को युक्ततम बतलाते है।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।। ६/४७

इसी योग में १० वें अध्याय का विभूतियोग और ११ वें अध्याय का विश्वरूप दर्शन योग सम्मिलित है। भगवान कहते है कि अकेला भक्तियोगी ही परमात्मा के इस विश्वरूप को देख सकता है।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।। ११/५४

यह भक्तियोग एक तरफ कर्मयोग और राजयोग से और दूसरी तरफ अक्षर उपासना तथा ज्ञानयोग से सम्बद्ध होता है। १२ वे अध्याय में भगवान कहते है कि अक्षर उपासना से भक्तियोग सुगम है और भक्त सदा सन्तुष्ट **(सन्तुष्टः सततम्)** रहता है। (१२/१४) और भक्ति योग का मार्ग भी धर्म्य और अमृत है। **(धर्म्यामृतमिदम्)** १३ वें अध्याय में भक्तियोग को ज्ञान योग का एक अंग कहा है। ज्ञान योग में जाकर भक्ति की पूर्ण सार्थकता होती है। भगवान कहते है कि कर्म की परिसमाप्ति ज्ञान में होती है। ४/३३ और ज्ञानी ही आत्मा है- **ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।** ७/१८

अद्वैत दर्शन का यह सिद्धान्त है कि जीवात्मैक्य बोध ही परम बोध है। इस प्रकार गीता में योग के अनेक अर्थ श्री योगेश्वर द्वारा निरुपित हुए हैं। इस बात को यदि हम लोग समझे और तदनुसार चले तो इससे अपना और राष्ट्र का भी उद्धार होगा। अस्तु।

***

अर्जुन तथा मानवमात्र के लिए गीता में भगवान के आदेश

–ब्र. ओम प्रकाश (लखनऊ)

सर्व साधारण के लिए गीता का उपदेश है, परन्तु विशेष कर अर्जुन के लिए विभिन्न स्थानों पर विशेष आदेश दिये गये है। इस प्रकार की आज्ञायें प्राय: ८० स्थलों पर है। अर्जुन के लिए तथा मानव मात्र के लिए विशेष रूप से १८ आदेश रह जाते हैं। इन आदेशों में गीता रहस्य अन्तर्निहित है।

१. **पहला आदेश** इस प्रकार है–

क्लैब्यं मा स्म गम पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं ह्रदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोतिष्ठ परंतप।। (२-३)

अर्थात् इसलिये हे अर्जुन ! नपुसंकता को मत प्राप्त हो तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परंतम ! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के लिए खड़ा होजा।

–यहाँ कर्तव्य पालन में वृती होने का आदेश दिया है।

२. **दूसरा आदेश :**

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदु:खदा:।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।। (२/१४)

अर्थात्–हे कुन्ती पुत्र ! सर्दी-गर्मी और सुख दु:ख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य है। इसलिए हे अर्जुन ! उनको तू सहन कर।

–यहाँ भगवान कष्ट सहन करने का आदेश कर रहे हैं।

३. **तीसरा आदेश :**

सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि।। (२-३८)

अर्थात्–जय, पराजय, लाभ, हानि और सुख-दु:ख को समान समझकर युद्ध के लिए तैयार होजा, तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

–सर्वदा तैयार रहने का आदेश।

४. **चौथा आदेश :**

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धन:।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंग: समाचर।। (३-९)

अर्थात्–यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्मों के अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ ही यह मनुष्य कर्मों से बँधता है इसलिए हे अर्जुन! तू आसक्ति से रहित होकर उस यज्ञ पुरुष के निमित्त ही भली भाँति कर्तव्य कर्मकर।

–कर्म समर्पित करने का आदेश।

५. **पाँचवाँ आदेश :**

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।। (३-१९)

अर्थात्–इसलिए तू अनासक्त हुआ निरन्तर सदा कर्तव्य कर्म को भली भांति करता रह। अनासक्त कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त होता है।

–यहाँ ममता से रहित होकर कर्म करने का आदेश है।

६. **छठवाँ आदेश :**

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।। (३-४३)

अर्थात्–इस प्रकार बुद्धि से बलवान और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्मा को जानकर बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके हे महाबाहो ! तू इस काम रूप दुर्जय शत्रु को मार।

–मुक्ति के मार्ग में काम ही प्रधान शत्रु है उसे मारने का आदेश।

७. **सातवाँ आदेश :**

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।। (४-३४)

अर्थात्–उस ज्ञान को तू आचार्यों के पास जाकर समझ, उनको दण्डवत प्रणाम व सेवा कर और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक उनसे प्रश्न कर। वे ज्ञानी एवं तत्वदर्शी आचार्य तुझे उस तत्व का उपदेश करेंगे।

–आत्मज्ञान के लिए गुरुदेव की शरण लेने का आदेश।

८. **आठवाँ आदेश :**

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन।। (६-४६)

अर्थात्–योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कार्य करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है; इससे हे अर्जुन! तू योगी होजा।

–सब अवस्था में ईश्वर से योग युक्त रहकर योगी होने का आदेश।

९. **नवाँ आदेश :**

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।। (७-१)

अर्थात्–श्री भगवान बोले– हे पार्थ! अनन्य प्रेम से मुझमें आसक्त चित्त तथा अनन्य भाव से मेरे परायण होकर योग में लगा हुआ तू जिस प्रकार मुझको पूर्णतया संशय रहित जानेगा उसकी सुन।

–तन्मय होकर शास्त्र एवं गुरू वाक्यों को श्रवण का आदेश।

१०. दसवाँ आदेश :

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।। (८-७)

अर्थात्-इसलिए हे अर्जुन! तू सब समय में निरन्तर मेरा स्मरण कर और अन्त: करण की शुद्धि के लिए युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किए हुए मन बुद्धि से युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।

-सब अवस्थाओं में प्रभु को स्मरण करने का आदेश।

११. ग्यारहवाँ आदेश :

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति।। (९-३१)

अर्थात्-वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शांति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नही होता।

-भगवद वाक्यों में दृढ़ विश्वास रखने का आदेश।

१२. बारहवाँ आदेश :

यद्यद्वि भूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव।
तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोऽशसम्भवम्।। (१०-४१)

अर्थात्- जो भी विभूति युक्त अर्थात ऐश्वर्य युक्त, कान्ति युक्त और शक्ति युक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति जान।

-बल, विभूति तथा ज्ञान, ऐश्वर्य आदि जितनी अलौकिक बातें हैं सब प्रभु के ही अंश मात्र हैं ऐसा जानने का आदेश।

१३. तेरहवाँ आदेश :

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहता: पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।। (११-३३)

अर्थात्- अतएव तू उठ ! यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीत कर धन धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब शूरवीर पहले ही से मेरे ही द्वारा मारे हुए है। हे सव्य साचिन! तू तो केवल निमित्त मात्र बन जा।

-सब कुछ के कर्त्त प्रभु ही है अपने को केवल निमित्त मात्र जानने का आदेश।

१४. चौदहवाँ आदेश :

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्टवा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम।
व्यपेतभी: प्रीतमना: पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।। (११-४९)

अर्थात्–मेरे इस प्रकार के इस विकराल रूप को देखकर तुझको व्याकुलता नही होनी चाहिए। और मूढ़भाव भी नही होना चाहिए। तू भयरहित और प्रीतियुक्त मन वाला होकर उसी मेरे इस शंख, चक्र, गदा, पद्म युक्त चतुर्भुजरूप को फिर देख।

–साधना की चरम अवस्था में निराकार भगवान साकार रूप में भक्त को दर्शन देते हैं। उस दिव्य दर्शन के लिए भक्त को भगवान विभिन्न प्रकार से उत्साहित करते है।

१५. पन्द्रहवाँ आदेश :

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशय।। (१२-८)

अर्थात्–मुझमें मन को लगा, और मुझमें ही बुद्धि को लगा देह त्याग के पश्चात् तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नही है।

–मन और बुद्धि को भगवान को अर्पित करने का विशेष आदेश।

१६. सोलहवाँ आदेश :

दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धायसुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।। (१६-५)

अर्थात्–दैवीसम्पदा मुक्ति के लिए और आसुरी सम्पदा बन्धन के लिए मानी गयी है, इसलिए हे अर्जुन! तू शोक मत कर क्योंकि तू दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुआ है।

–दैवी सम्पदा वाले भक्त के लिए निर्भय एवं निडर होने का आदेश।

१७. सत्तरवाँ आदेश :

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म, तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।। (१८-५०)

अर्थात्–जो कि ज्ञान योग की परानिष्ठा है, उस नैष्कर्म्य सिद्धि को जिस प्रकार प्राप्त होकर मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त होता है। उस ज्ञान निष्ठा को हे कुन्ती पुत्र! तू संक्षेप में ही मुझसे समझ–

–निष्काम कर्म तथा विभिन्न साधनों द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि होने पर सच्चिदानन्द घन ब्रह्म का दर्शन होता है। इस विश्वास पर दृढ़ रहने का आदेश–

१८. अठारहवाँ आदेश :

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (१८-६६)

अर्थात्–सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् कर्तव्य कर्मों को मुझ में त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आजा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

–प्रभु शरणागति ही जीवन लक्ष्य तक पहुँचने का एक मात्र उपाय है, इसी कारण शरणागति का अन्तिम आदेश दिया है।

***

वैष्णव भक्त पर अहैतुकी कृपा

प्रेषक: केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

घटनाक्रम से संबंधित बालक श्री दयाशंकर भगवान,श्री राम की जन्मभूमि अयोध्या में निवास कर रहे थे। अपने अयोध्या निवास काल में उसने वैष्णव मत का सहारा लेकर घोरतम तप किया। नियम से की गयी लगातार साधना के फलस्वरूप उसके मन में वैराग्य भाव का उदय हो गया एवं उसने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब वह अपने इसी शरीर से सिद्धाश्रम में प्रवेश करेगा। अपने इस मनोरथ की पूर्ति के लिए कि मैं सिद्धाश्रम निवास करूँ, उसने उत्तराखण्ड की आध्यात्मिक यात्रा आरम्भ की। इस तीर्थ यात्रा के तारतम्य में वह साधक श्री महाप्रभु जी के नेपाल धाम स्थित मुक्ति धाम तक पहुँच गया। मुक्ति धाम के पास अपना निवास स्थान बनाकर उसने घोर तप एवं स्वाध्याय करना आरम्भ किया। उसने भोजन का त्याग अपनी इस प्रतिज्ञा के साथ कर दिया कि जब तक हमें सिद्धाश्रम का ठीक-ठीक पता नहीं मिल जायेगा, तब तक हम भोजन ग्रहण नहीं करेंगे। उसने बिना भोजन ग्रहण किये घोर तप एवं स्वाध्याय किया। उसकी ऐसी दृढ़ लगन श्रद्धा एवं आध्यात्मिक साधना से प्रसन्न होकर एक योगीराज उसके सामने प्रकट हुए। ऐसे वीरान स्थान में अपने सामने एक तेजस्वी व्यक्ति को देखकर उसने मन ही मन प्रणाम किया। योगीराज जी बिना उसके कुछ प्रार्थना किये उपदेश पूर्ण वाणी से बोले-''तुम यहाँ सिद्धाश्रम में प्रवेश पाने की नियत से तप एवं स्वाध्याय कर रहे हो।'' साधक को कुछ प्रसन्नता का अनुभव हुआ एवं उसने निवेदन किया कि-हाँ महाराज ! मेरी यहाँ साधना करने का एकमात्र प्रयोजन सिद्धाश्रम में प्रवेश पाने की इच्छा ही है। वैष्णव भक्त की प्रार्थना सुनने के बाद योगीराज जी ने आगे कहा कि यदि ऐसी बात है तो तुम हमारी बातों को मन एकाग्र करके सुनो।

उन्होंने बतलाया कि जिस पर उनकी अनुकम्पा होती है वही निहाल होता है-परम योग योगेश्वर सिद्धेश्वर श्री रामलाल जी की आज्ञा एवं कृपा के बिना कोई भी साधक सिद्धाश्रम में प्रवेश नहीं कर सकता। सिद्धेश्वर श्री रामलाल जी महाराज का नाम उस वैष्णव भक्त साधक ने अपनी जिन्दगी में पहली बार ही सुना था। अतः उसने योगीराज जी से प्रार्थना की कि महाराज! ये सिद्धेश्वर श्री रामलाल जी महाराज कौन है एवं उनके दर्शन हम कहाँ प्राप्त कर सकते है ? उसकी ऐसी आतुरता एवं प्रार्थना से द्रवीभूत होकर योगीराज जी ने बतलाना आरम्भ किया कि सिद्धों के ईश्वर एवं सिद्धाश्रम के एक मात्र स्वामी का नाम श्री रामलाल जी महाराज है। वे योगियों के भी ईश्वर तथा परम योग योगेश्वर है। आगे उपदेशित करते हुए योगिराज जी ने बतलाया कि उनके दर्शन के लिए तुम्हें उनके निवास स्थान पर जाना चाहिए परन्तु तुम अपने इस शरीर से उनके निवास स्थान पर नहीं

पहुँच सकते। वैष्णव भक्त साधक योगीराज जी का यह उपदेश सुनकर उदास एवं निराश हो गया। उसके मनोभावों को देखकर योगीराज जी ने सांत्वना देते हुए कहा कि उदास या निराश होने की आवश्यकता नही। हम एक युक्ति बतलाते है, तुम उसका ही पालन करो। वे करूणानिधान है, अवश्य ही द्रवीभूत होकर कृपा कर देंगे। योगीराज जी ने युक्ति बतलाते हुए उपदेश दिया कि यहाँ से आठ किलोमीटर ऊपर आगे नदी के बिल्कुल किनारे एक बड़ा विशालकाय वृक्ष है। उस वृक्ष में एक खोखला स्थान है जिसमे गुफा सी बन गयी है। यदा कदा सिद्धेश्वर श्री रामलाल जी महाराज उस स्थान पर जाया करते है और उसी गुफा में बैठते है। तुम उसी स्थान पर चले जाओ एवं उसी के पास अपना निवास बनाकर अपनी तपस्या और स्वाध्याय करते रहो। वे दयानिधान है, उस करूणा सागर को दया आ ही जावेगी और तुम्हे उनका दर्शन लाभ हो जावेगा। इतना वैष्णव भक्त को उपदेशित करने के बाद योगिराज उसके सामने से अन्तर्ध्यान हो गये।

योगीराज जी की आज्ञा शिरोधार्य कर वह वैष्णव भक्त साधक वहाँ से चलकर तत्काल उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ श्री सिद्धेश्वर जी महाराज यदा कदा पधारा करते थे। उस वृक्ष के करीब ही नदी के किनारे निवास करते हुए उसने इस आशय से तपश्चर्या एवं साधना आरम्भ की, कि या तो सिद्धेश्वर प्रभु का दर्शन करूँगा या यही शरीर त्याग करूँगा। वैष्णव भक्त साधक ने अत्यधिक लगन एवं श्रद्धा से घोर तपश्चर्या करना आरम्भ किया। आखिर करूणासागर को दया आ ही गयी। एक दिन उस वैष्णव भक्त पर कृपा करने नदी के किनारे स्थित वृक्ष की गुफा में पधारे। वैष्णव भक्त साधक, जो करीब मे ही तपश्चर्या कर रहा था, उनके तेजोमय शरीर एवं दिव्य प्रकाश को देखकर सहज ही पहचान गया कि सिद्धाश्रम के कर्त्ता धर्त्ता सिद्धेश्वर श्री रामलाल जी महाराज यही है। उसने उठकर श्री चरणों में प्रणाम करना चाहा। श्री महाप्रभु जी ने आज्ञा दी तुम दूर से ही प्रणाम कर लो। अभी तुम मेरे चरणों को स्पर्श मत करो। उस वैष्णव भक्त साधक ने दूर से ही साष्टांग प्रणाम किया। उसके प्रणाम कर लेने के बाद श्री मुख ने उपदेशित किया कि अभी तुम्हारा शरीर इस योग्य नही बन पाया है कि तुम सिद्धाश्रम मे प्रवेश कर सको। यदि तुम सिद्धाश्रम के अन्दर प्रवेश पाने की दृढ़ इच्छा रखते हो तो ऋषिकेश चले जाओ। वहाँ गंगा किनारे झोपड़ी लगाकर अमुक प्रकार से अपनी आध्यात्मिक साधना करते रहो।

सिद्धेश्वर श्री रामलाल जी महाराज ने अपने उस बालक से कुछ गुप्त बातें भी बतलायी। इस साधक बालक ने प्रणाम करके प्रार्थना की कि प्रभो! कब तक कृपा होगी ? उसकी ऐसी प्रार्थना सुनकर महाराज श्री सिद्धेश्वर जी ने मुस्कराते हुए आज्ञा प्रदान की कि बेटा ! धैर्य रखो। अपनी आध्यात्मिक प्रगति जारी रखो। बेटे! घबराने की रंचमात्र भी आवश्यकता नही है। तुम स्वाध्याय करते रहो, जब तुम्हारा शरीर इस योग्य बन जायेगा कि तुम सिद्धाश्रम मे निवास कर सको तो हम

खुद तुम्हें सिद्धाश्रम में बुला लेंगे। उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर वह साधक उस स्थान से चल पड़ा एवं ऋषिकेश आ गया। ऋषि केश में गंगा के किनारे, झाड़ियों के करीब ही उस साधक ने झोपड़ी लगाकर श्री महाप्रभु जी के स्वरूप के सहारे अपनी आध्यात्मिक तपश्चर्या आरम्भ कर दी। मन्त्र जाप एवं ध्यान इस साधक के जीवन के अभिन्न अंग बन गये है।

प्रभु का यह कृपापात्र बालक जो कुछ वर्ष पूर्व तक वैष्णव पथ का पथिक था, अब अकारण दयालु परम योग योगेश्वर, सिद्धेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की करूण कृपा से योग मार्ग का योग्य साधक या यों कहा जाय कि योगी बन गया है। अपनी तपश्चर्या एवं स्वाध्याय के बल पर इस योग्य साधक ने श्री महाप्रभु जी के दिव्य स्थूल शरीर का दर्शन लाभ किया है। आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व इस बालक ने अपनी अन्तरआत्मा की आवाज पर योग साधन आश्रम ऋषिकेश जाकर हमारे आपके और प्राणी मात्र के भाग्य विधाता आराध्यदेव श्री सद्गुरू भगवान के युगल चरणों में साष्टांग प्रणाम किया था। उन अकारण दयालु सिद्धेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की कृपा लीलाओं का अन्त कहाँ ? उनकी कृपाओं का प्रवाह अनवरत अबाधगति से चल रहा है। दूसरे सम्प्रदाय के लोगों पर भी जिनको आध्यात्मिक या सांसारिक सहायता की आवश्यकता है वे कल्याण धन श्री महाप्रभु जी सदैव कृपा करते ही रहते हैं।

प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय झाँसी के वार्षिकोत्सव में संगीत के बेजोड़ कलाकार उस्ताद बब्बन खाँ, आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के सम्मुख जब अपनी कला का प्रदर्शन कर चुके एवं श्री प्रभु जी ने उन्हें प्रसाद देने के लिये अपने करीब बुलाया तो उस्ताद बब्बन खाँ ने दूर से ही धरती पर सिर रखकर प्रणाम किया एवं विनीत स्वर में प्रार्थना किया कि, "प्रभु जी ! हमारे बहुत से दुश्मन है जो हमें जान से मार डालना चाहते हैं, कृपया मेरी रक्षा की जाय।" उसकी प्रार्थना सुनने के बाद श्री मुख ने कहा, "उस्ताद बब्बन खाँ, तुम्हें जान से मार डालने की बात तो आज, अभी इसी समय से समाप्त हो गयी। श्री प्रभु जी तुम्हारी रक्षा करेंगे एवं तुम्हें कोई भी जान से नही मार सकता।" श्री प्रभुजी ने उस्ताद बब्बन खाँ को आदेशित किया कि, लल्ला, तुम योगेश्वर भगवान कृष्ण एवं योगिनी मीरा के भी भजन बनाया करो एवं सप्रेम सुनाया करो। उस्ताद बब्बन खाँ ने उसी दिन सायंकालीन कार्यक्रम में भगवान श्रीकृष्ण का भजन सुनाया जिसे सुनकर श्री गुरूदेव भगवान परम आह्लादित हो गये एवं अनेक लौकिक एवं पारलौकिक आशीर्वाद एवं प्रसाद दिया। उसके बाद उस्ताद बब्बन खाँ झाँसी के कार्यक्रमों में भाग लेते रहे तथा श्री प्रभु जी की करुण कृपा से उनका जीवन कृष्णमय बन गया। इसीलिये तो कहा गया है–**"सब पर कृपा करते केवल शिष्यों पर ही नहीं"**

※※※

महाप्रभु जी की सहस्त्राब्दि को देन !

-अवनीश कुमार भटनागर (सहारनपुर)

यौगिक दृष्टि से इस सहस्त्राब्दि का यह सौभाग्य ही कहा जायेगा कि आनन्दकंद परम करुण निकेतन श्री रामलाल महाप्रभु अपने परम कल्याणकारी दिव्य संकल्प को लेकर हिमालय के परम रमणीक हिमाच्छादित, उत्तुंग शिखर को त्यागकर योग विद्या के पुनर्स्थापन हेतु मानव बस्तियों में अनेकों शरीर धारण करके प्रकट हुए श्री महाप्रभु जी एवं गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने सशरीर पृथ्वी पर अवतरण का यही काल खण्ड चुना यह हम सभी के लिए विशेष गौरव की बात है।

सिद्धेश्वर आनन्दकन्द श्री रामलाल जी महाप्रभु ने विदेशी मानसिकता के दुष्प्रभाव से निरन्तर अधोगत् अर्वाचीन आध्यात्मिक भारतीय चेतना को एक ओर जहाँ अपने परम तेजस्वी प्रभाव से पुनर्प्रतिष्ठित किया वहीं अपनी दिव्य शक्ति से असंख्य लोगों का कल्याण किया। आज आध्यात्मिक क्षेत्र में जो अनेक विभूतियाँ भगवद् नाम का प्रकाश जगत को दे रहे हैं और सामाजिक उत्थान की भावना से निरन्तर समाज-कल्याण का कार्य कर रहे हैं, उनमें से अधिकांश सिद्धेश्वर शिरोमणि श्री रामलाल प्रभुजी के दिव्य तेज से ही प्रकाशित है। इन सर्व समर्थ शिष्यों ने 'शक्तिपात्' की अनमोल शक्ति द्वारा अनगिनत लोगों में दिव्यचेतना का संचार किया है। परिणामस्वरूप ये लोग आध्यात्मिक उन्नति की ओर बढ़कर कैवल्य की सुखानुभूति प्राप्त कर रहे हैं। उन्ही करुण निकेतन आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलालजी के परम दिव्य संकल्प से उनके प्रिय शिष्य योगिराज ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी महाराज के श्रीमुख से अब 'गोविन्द जय-जय। गोपाल जय-जय राधारमण हरि गोविन्द जय-जय' की अमर भक्ति ध्वनि प्रकट हुई तो उसने देश की सीमाऐं तोड़कर सारे संसार को आह्लादित कर दिया।

भारत के विश्वगुरु होने की पृष्ठभूमि में निःसंदेह 'योग विद्या' ही है। यह भारत का 'योग' ही है, जिसे 'योगा' उच्चारित करते हुए पश्चिमी देश उसका अनुगमन करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। अमरीका के डा० कूपर जिन्होंने 'ऐरोबिक्स' को जन्म देकर व्यायाम की दुनियाँ में खूब ख्याति अर्जित की है, महाप्रभु के अमर योग साधनों से बेहद प्रभावित हैं। इस आशय का एक लेख पिछले दिनों 'कादम्बिनी' मासिक के तन्त्र मंत्र विशेषांक में प्रकाशित हुआ है। आज स्थान-स्थान पर हमें योग कैम्प, योग कक्षाओं, योग केन्द्रों का जाल सा बिछाई देता है। सच तो यह है कि वर्तमान में योग का ध्वज सम्पूर्ण जगत में फहराने का प्रथम श्रेय श्री रामलालजी महाप्रभु तथा उनके परमशिष्य योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को ही जाता है। हम सभी गुरु भाइयों का कर्तव्य है कि हम इन महानविभूतियों द्वारा प्रज्ज्वलित योग-ज्योति को न केवल जलाये रखें अपितु उसका प्रकाश दिग्दिगन्त में फैलाने के लिए भागीरथ प्रयत्न करते रहें। ※※※

जीवन तत्व साधन

इस स्तम्भ में आगे हम जीवन तत्व साधन की क्रियाओं की विधि, समय एवं लाभ को दर्शाते हुये पाठकों के हितार्थ कई अंकों में इसे प्रकाशित करेंगे। आश्रम से सम्बन्धित सभी साधक इन क्रियाओं से परिचित हैं और उनमें बहुत से इन क्रियाओं को अपने दैनिक जीवन के क्रम में आवश्यक रूप से जोड़े हुये हैं। किन्तु नये पाठकों के लाभार्थ ही यह श्रृंखला प्रकाशित की जा रही है। ये क्रियायें आनन्द कन्द परम गुरुदेव योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने नैपाल से इस अवनि मण्डल पर आने के बाद अपने मन से उद्घाटित की है। ये क्रियायें पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है। यदि कोई नियमित इनका अभ्यास करता है तो वह पूर्णतया जीवन में निरोग रहता है और यदि किसी रोग से आक्रान्त हो भी गया हो तो वह रोग दूर हो जाते हैं। रोगों के लिये यह रामबाण है। अतः सभी योग साधकों को इन क्रियाओं को करना चाहिये। इनसे शारीरिक मल तो दूर होते ही है प्राणमय कोष पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। मन की एकाग्रता में ये क्रियायें परम उपादेय है। इससे वात, पित्त एवं कफ दोष साम्यावस्था में रहकर शरीर को ठीक प्रकार से चलाते हैं। जो व्यक्ति शहरों में रहते हुये शारीरिक श्रम नहीं करते उनके लिये तो ये क्रियायें बहुत ही फलप्रद हैं।

जीवन तत्त्व साधन करने के लिए कुछ नियम हैं जिनका जान लेना आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं-

(१) इन क्रियाओं को नित्य आदर पूर्वक करना चाहिए कभी नागा नहीं करना चाहिए।

(२) इन क्रियाओं को करने के लिए जो समय का विभाजन है उसी के अनुसार साधन करना चाहिए। जो क्रिया जितनी बार या जितने समय तक करने का विधान है उसे उतने समय तक करना चाहिए। शुरू में थोड़े से आरम्भ करना चाहिए और धीरे-धीरे पूर्ण समय तक अभ्यास बढ़ा लेना चाहिए। कभी कम व कभी अधिक करने से पूर्ण लाभ नहीं होता है।

(३) इन क्रियाओं को करते समय घड़ी रख लेना आवश्यक है, घड़ी से कुछ दिन अभ्यास कर लेने पर गिनती के आधार पर भी साधन किया जा सकता है।

(४) यदि इन क्रियाओं को प्रातःकाल मध्यान्ह काल व सायं काल अर्थात् नित्य तीन बार छः मास तक किया जावे तो मनुष्य का काया कल्प हो जाता है और उनके सभी रोग जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं। यदि तीन बार साधन करने का अवकाश न हो तो केवल प्रातःकाल करना चाहिए। [illegible] क्रियाओं के करते समय लंगोट या कोपीन अवश्य पहन लेना चाहिए।

(५) इन क्रियाओं को प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में करने से विशेष लाभ होता है। सूर्योदय [illegible] दो घण्टे पूर्व साधन आरम्भ कर देना चाहिए। समय में परिवर्तन नहीं करना चाहिए। नित्य ठीक समय से साधन आरम्भ कर देना चाहिए।

(६) यदि कोई मनुष्य अन्य योगासनों के करने का अभ्यासी है तो उसे [illegible]वन तत्व करने के बाद कुछ देर शवासन से लेटकर आराम कर लेना चाहिए और तदनन्तर अन्[illegible] आसन व्यायाम अथवा जप ध्यान करना चाहिए।

(७) प्रातःकाल शौच-स्नान के बाद इन क्रियाओं को [illegible]रना चाहिए। बहुत अधिक सर्दी हो

अथवा प्रातः स्नान में असमर्थ हो तो भीगे वस्त्र से शरीर को पोंछ कर कपड़ा बदल देना चाहिए।

(८) शौच व दन्त धावन के बाद जल नेति की क्रिया कर लेना बड़ा लाभदायक होता है। यह क्रिया किसी जानकार से सीख लेनी चाहिए अथवा श्री सिद्ध गुफा पर जाकर सीख लेनी चाहिए।

(९) जीवन तत्व साधन करने वालों को नाक से दूध पीना भी बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है। यह दुग्धपान साधन करने के बाद करना चाहिए। सोंठ मिला हुआ गुनगुना दूध नाक से पिया जाता है। यह क्रिया भी सिद्ध गुफा पर जाकर सीखी जा सकती है। इससे सिर के समस्त रोग मिट जाते हैं और दूध पच जाता है। मुख से पीने के अनुपात में नाक से चौगुना लाभ करता है। स्नायु मण्डल को भारी बल मिलता है। मनुष्य के शरीर में अद्भुत परिवर्तन दिखाई देने लगता है। मुख-मण्डल दैदीप्यमान हो जाता है।

(१०) जीवन तत्व क्रियाओं को करने के बाद पेट की अग्नि तीव्र हो जाती है अतः उस समय कुछ खा लेना आवश्यक है। यदि सम्भव हो सके तो नासिका से सोंठ मिला दूध पी लेना चाहिए। अथवा खीर, दलिया, भीगे अंकुरित चने आदि पदार्थ खा लेना चाहिए। चाय आदि न लिया जावे तो अच्छा है।

(११) जीवन तत्व साधन की छठवी व सातवी क्रियाओं का नाम **बालमचलन व बच्चे का ध्यान** है। जिस समय साधक इन क्रियाओं को करता है तो उसको बच्चे की स्पष्टाकृति दिखाई पड़ने लगती है और उसके मन मे ऊँचा आल्हाद पैदा हो जाता है। जिसके कारण वह सारे दिन बच्चों की तरह हंसता खेलता कूदता रहता है। इस प्रसन्नता के फलस्वरूप सभी प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोग दूर हो जाते हैं।

(१२) जीवन तत्व साधन करने वालों को व्रत व उपवास नही करना चाहिए किन्तु इसका यह तात्पर्य नही कि उसे भक्ष्य-अभक्ष्य सभी पदार्थ खाते रहना चाहिये। उसे सात्विक व पौष्टिक भोजन ग्रहण करना चाहिए और राजसिक व तामसिक भोजन का पूर्णतः त्याग कर देना चाहिए। इसके सम्बन्ध में भगवान श्री कृष्ण ने बताया है कि-

आयुः सत्व बलारोग्य, सुख प्रीति विवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा, ह्रद्या आहाराः सात्विक प्रियाः। -गीता १७/८

अर्थ-आयु, उत्साह, बल, आरोग्य, सुख प्रीति बढ़ाने वाले तथा रसदार, चिकने, चिरस्थायी, दिल पसन्द सात्विक पुरुष को प्यारे होते है।

कट्वम्ल लवणात्युष्ण, तीक्ष्ण रुक्ष विदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा, दुःख शोकामय प्रदाः।। -गीता १७/९

अर्थ-कड़वे, खट्टे, नमकीन, अति गरम, तीक्ष्ण, रुखे, दाह करने वाले तथा दुःख, शोक और रोग देने वाले आहार रजोगुणी पुरुषों को प्यारे होते हैं।

यातयामं गतरसं पूति, पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं, भोजनं तामस प्रियम्।। -गीता १७/१०

अर्थ-ठण्डा नीरस दुर्गन्धित, बासी, जूठा और अपवित्र आहार तमोगुणी पुरुषों को प्यारा होता है।

योगियों को केवल सात्विक भोजन करना चाहिए। भोजन के सम्बन्ध में आजकल बहुत भ्रान्तियाँ फैली हुई है। कौन-सा भोजन नीरोगता व स्वस्थता को बढ़ाता है इसको समझ लेना चाहिए।

हम पिछले पृष्ठ पर बता आए है कि जीवन तत्व साधन करने वालों को सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए। हमारा स्थूल शरीर अन्नमय कोश से बना है। जैसा हम अन्न खाते है वैसा हमारा मन बनता है। क्या खाना चाहिए, क्या नही खाना चाहिए, कितना खाना चाहिए और कब खाना चाहिए आदि बातों को जान लेना आवश्यक है। इस विषय को बताने के लिए हम एक कहानी के माध्यम से समझाने का प्रयास करेंगे।

महर्षि चरक जब आयुर्वेद के सारे ग्रन्थ लिख चुके, सब प्रकार की विधियों का, सब प्रकार की औषधियों का, चिकित्साओं का वर्णन कर चुके और प्रचार भी कर चुके तो उनके मन में विचार आया कि चलूँ देखूँ लोग मेरे बताये मार्ग पर चलते भी है या नही। वे एक पक्षी का रूप धारण करके उड़े और वहाँ गये जहाँ वैद्यों का बाजार था। एक वृक्ष पर बैठ कर पक्षी ने ऊँची आवाज में कहा 'कोऽरुक' अर्थात कौन रोगी नही है। एक वैद्य ने पक्षी को देखा, उसकी बात को समझा और कहा-जो 'च्यवनप्राश' खाता है वह रोगी नही है। एक और वैद्य बोला जो 'चन्द्रप्रभा वटी' खाता है वह रोगी नही है। तीसरा वैद्य बोला जो 'बंग भस्म' खावे वही निरोगी है। चौथे वैद्य ने कहा यह सब गलत बाते है। जब तक 'लवण भास्कर चूर्ण' नही खाओगे तब तक पेट ठीक नही होगा और जब पेट नहीं होगा तब तक रोग बना रहेगा। चरक ने यह सब सुना तो दुखित हो गये। उन्होंने सोचा कि मैंने इतना बड़ा शास्त्र रचा तो क्या इसलिए कि मनुष्य के पेट को दवाईयों का गोदाम बना दिया जावे। मेरा परिश्रम निष्फल गया। वे दुखी होकर उड़े। कई स्थानों पर गये। हर स्थान पर उन्होंने कहा 'कोऽरुक'। कहीं से भी ठीक उत्तर नहीं मिला। अन्त में वे एक उजाड़ सुनसान स्थान पर एक सूखे वृक्ष की शाखा पर बैठ गये। उनके पास ही एक नदी बहती थी। नदी में नहाकर प्रसिद्ध वैद्य वाग्भट्ट महाराज बाहर आ रहे थे। चरक ने उन्हें पहिचाना और पुकार कर कहा 'कोऽरुक' वाग्भट्ट चलते-चलते रुक गये, आँख उठा कर पक्षी की ओर देखा और समझ गये। वे बोले **हित भुक्, मित् भुक्, ऋत् भुक्।** चरक इन शब्दों को सुनते ही वृक्ष के नीचे आ गये और पक्षी रूप छोड़कर वाग्भट्ट के सामने खड़े होकर बोले-वैद्यराज तुमने ठीक समझा है।

परन्तु इस हित् भुक्, मित् भुक्, ऋत् भुक् का क्या अर्थ है-इसे अब बताऊँगा। जो मनुष्य निरोग रहना चाहे और अच्छे स्वास्थ्य का इच्छुक हो, वह इन शब्दों को अपने घर की दीवाल पर लिखवा ले। इनका सदैव ध्यान रखे और इन उपदेशों का पालन करे। यह तीनें शब्द हमारे आहार सम्बन्धी समस्त नियमों को बताते है।

हित भुक्

भोजन हमारे शरीर के लिए हितकारी है उसी को प्रयोग मे लाकर हम स्वस्थ रह सकते है, इसी

को हित भुक् कहते है। आज विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि स्वास्थ्य को कायम रखने के लिए किन-किन पदार्थों को खाना चाहिए और कौन-कौन भोजन त्याज्य है ? आदर्श भोजन में १४ तत्व अवश्य होना चाहिए। वे निम्न लिखित है-

१. ऑक्सीजन : टमाटर, किशमिश, मुनक्का, आलू आदि में पाया जाता है। यह मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ाने वाला है।

२. हाईड्रोजन : हरे ताजे फल, साग, तरकारी, दूध आदि में पाया जाता है। जीवन को शक्ति प्रदान करता है तथा भीतरी सफाई करता है।

३. नाईट्रोजन : दूध, मट्ठा, सेम, आलू, बादाम आदि में पाया जाता है। यह ऑक्सीजन को अधिक गर्मी से सुरक्षित रखता है।

४. कार्बन : आलू, अनाज, सूखे मेवे, अंगूर, सेब आदि में पाया जाता है। यह ऑक्सीजन में मिला रहता है और गर्मी बनाए रखता है।

५. कैल्शियम : गेहूँ, दूध, नीबू, गोभी, मट्ठा आदि में पाया जाता है। यह हड्डियों को मजबूत करता है।

६. फास्फोरस : नारियल, अनन्नास, जैतून आदि में पाया जाता है। यह रीढ़ तथा मस्तिष्क की रक्षा करता है।

७. सल्फर : पातगोभी, किशमिश, मुनक्का, फूल गोभी, आदि में पाया जाता है। यह विजातीय द्रव्य को शरीर से निकाल कर बाहर करता है।

८. सोडियम : मकोय आदि में पाया जाता है। कार्बन की अधिकता रोकता है तथा लार को बढ़ाता है।

९. फ्लोरीन : गोभी, बकरी के दूध नारियल आदि में पाया जाता है। यह मोटापे को कम करता है और शरीर को दुर्बल होने से बचाता है।

१०. क्लोरीन : लाल गाँठ गोभी, शलजम, आदि में पाया जाता है। हड्डियों को दृढ़ बनाता है और आँखों की रक्षा करता है।

११. लोहा : गाजर, पालक, चोकर आदि में पाया जाता है, यह खून को बढ़ाता और रोगों से बचाता है।

१२. पोटेशियम : जैतून का सूखा फल, पिपरमेन्ट में पाया जाता है।

१३. मैग्नीशियम : सन्तरा, खजूर, नारियल आदि में पाया जाता है। यह खून को खारी बनाता है, दाँतों को मजबूत बनाता है और गहरी निद्रा लाता है।

१४. सिलिकिन : जई, जौ का दलिया, चावल, कच्चा दूध, आलू का छिलका, चोकर आदि में पाया जाता है। यह बुद्धि को बढ़ाता है और शरीर को विषैले प्रभाव से बचाता है।

निम्नलिखित सात चीजें न्यूनाधिक भोजनों में पाई जाती है। इनका उचित मात्रा में प्रयोग, शरीर की शक्ति को स्थिर रखने के लिए जरूरी है। वैज्ञानिकों ने अन्वेषण करके यह बता दिया है कि

किस पदार्थ में निम्न चीजें किस मात्रा में होती हैं और उनका प्रयोग किस मात्रा मे करना चाहिए।

१. प्रोटीन : शरीर के बढ़ाने और बनाने वाले अंग दूध, घी, दही, अंकुरित चना, गेहूँ, दलिया से मिलता है।

२. चिकनाई : इसका काम गरमी और शक्ति पैदा करना है। जो दूध-घी मक्खन व तेल से मिलता है।

३. कार्बोहाइड्रेट : इसका काम भी गर्मी व शक्ति देना है। जो अनाजों, मीठे फलो व खजूर में मिलता है।

४. मिठास : शक्कर, शहद, किशमिश, मुनक्का, अंगूर व अन्य मीठे फलों से मिलता है।

५. नमक : सब्जी व तरकारियों से जो नमक मिलता है वही असली नमक है।

६. पानी : शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पानी की बड़ी आवश्यकता है।

७. विटामिन : इनकी व्याख्या आगे की गई है।

विटामिन

नये विज्ञान में विटामिनों को बहुत ऊँचा दर्जा दिया गया है। इनकी कमी से नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं। मुख्य विटामिन ए. बी. सी. डी. व ई. है।

विटामिन ए.

यह शरीर को बढ़ाता है, फेफड़ों को बल देता है। छूत के रोग से बचाता है। आँखों में रोग होने से रोकता है। इसकी कमी से नाक, कान, आँख, फेफड़े व दांत के रोग हो जाते है। यह दूध, घी, मक्खन, पनीर, पालक, बथुआ, गोभी, शलजम के पत्ते हरी धनिया व सहजना की पत्तियों में पाया जाता है। च्यवनप्राश मे भी यह विटामिन रहता है। हरी धनिया में यह इतना होता है कि एक सौ ग्राम हरी धनिया खाने से २२ घण्टों के लिए **विटामिन ए** मिल जाता है।

विटामिन बी.

हृदय, मस्तिष्क व नसों को यह स्वस्थ व ताजा रखता है, भूख बढ़ाता है। रगों, पट्ठों और आँतो को शक्ति देता है। बेरीबेरी को दुर करता है। इसकी कमी से मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है। बदहजमी, दस्त, कब्ज व पेट का दर्द हो जाता है। खून की कमी हो जाती है और एनीमिया रोग हो जाता है। गेहूँ, जई (oatmeal) मकई, साठी चावल, सोयाबीन, मटर, दाल, चना, टमाटर, मूँगफली, अखरोट, खजूर, पपीता, अमरूद में पाया जाता है। जई, सोयाबीन व मूंगफली में इतना होता है कि १०० ग्राम खाने से १४ घण्टे के लिए विटामिन बी. मिल जाता है। और पेट, रगों व पट्ठों के अनेक रोग दूर होकर भूख लगने लगती है, खाना हजम होने लगता है और खून बढ़ने लगता है। विटामिन बी. के कई भाग है। अभी तक १२ का अनुसंधान हो चुका है।

(शेष आगे के अंक में)

***

'सिद्धयोग' मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं० ४

१. प्रकाशन का स्थान — श्री सिद्धगुफा, सवाई, आगरा (उ० प्र०)
२. प्रकाशन का अवधिक्रम — मासिक
३. मुद्रक का नाम — विनय गजानन शर्मा।
राष्ट्रीयता — भारतीय।
पता — कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा—२८२००१।
४. प्रकाशक का नाम — विनय गजानन शर्मा कृते सिद्धगुफा प्रकाशन, सवाई (आगरा)
राष्ट्रीयता — भारतीय।
पता — श्री सिद्धगुफा योग–प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (आगरा)
५. सम्पादक का नाम — आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा।
राष्ट्रीयता — भारतीय।
पता — श्री सिद्धगुफा योग–प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (आगरा)
६. स्वत्वाधिकारी — ब्रह्मलीन अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज।

मैं विनय गजानन शर्मा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

दिनांक —२८ फरवरी २०००

कृते सिद्धगुफा प्रकाशन
विनय गजानन शर्मा

श्री रामलाल योगाश्रम कानपुर का ३० वाँ वार्षिक उत्सव

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी श्री रामलाल योगाश्रम, कानपुर का ३० वाँ वार्षिक उत्सव दिनांक ३१ मार्च व १–२ अप्रैल २००० तद्नुसार शुक्र, शनि व रविवार को धूमधाम से मनाया जायेगा। इस अवसर पर आयोजित अन्यान्य भव्य कार्यक्रमों में सम्मिलित होने के लिए सभी सत्संगीबंधु सादर आमंत्रित है।

चिन्तामणि पाण्डेय
(प्रधानाचार्य)

आश्रम का पता: ४/१४२ आनन्द नगर, शुक्लागंज, उन्नाव (उ० प्र०)

अपनी बात

सिद्धयोग इस अंक के साथ अपने अनवरत प्रकाशन के ३२ वर्ष पूर्ण कर ३३ वे वर्ष मे प्रवेश कर रहा है। मानव मूल्यो के सर्वोन्मुखी विकास के लिए आवश्यक योग के सुस्थापित सिद्धान्तो के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य को सम्मुख रखकर परमपूज्य श्री प्रभु जी की अहैतुकी अनुकम्पा से योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा इस मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया था। उनके द्वारा सिंचित यह लघु पौधा अब सुविकसित वृक्ष का रूप ले रहा है। पत्रिकाओं की भीड़ मे अपनी अलग पहचान बनाये रखने के उद्देश्य से और व्यावसायिक होड़ से बचने के लिए **सिद्धयोग** मे किसी भी प्रकार के विज्ञापन प्रकाशित न करने की जो नीति श्री गुरुदेव जी ने निर्धारित की थी, उसका पालन आज भी दृढ़तापूर्वक किया जा रहा है। अत: अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए **सिद्धयोग** मुख्यत: अपने ग्राहकों और दानदाताओं पर ही निर्भर है। इसके अतिरिक्त व्यवस्थापक मण्डल को पत्रिका के नियमित प्रकाशन के लिए अनुदान के रूप मे भी धन की व्यवस्था करनी पड़ती है।

प्रस्तुत मार्च २००० अंक ३२ वे वर्ष का अंतिम अंक है। वास्तव मे यह फरवरी-मार्च का संयुक्तांक है। हमे खेद है कि किन्ही अपरिहार्य कारणो से फरवरी-२००० का अंक प्रकाशित नही किया जा सका। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहको का पत्रिका के ३२ वे वर्ष का शुल्क समाप्त हो जाता है। अत: सभी ग्राहको एवं गुरु भाई-बहिनो से निवेदन है कि वे ३३ वें वर्ष का शुल्क (रु० ७५/-) **सिद्धयोग कार्यालय, सवांई (आगरा)** मे पहुँचकर ब्र० राजेशचन्द शर्मा अथवा आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा के पास जमा करायें या मनीआर्डर द्वारा इन्ही के नाम से **सिद्धयोग कार्यालय, श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (आगरा)** के पते पर भेजें। चूँकि वी० पी० द्वारा **सिद्धयोग** मंगाना ग्राहकों के लिए बहुत व्ययसाध्य होता है अत: पत्रिका शुल्क मनीआर्डर से ही भेजने मे सुविधा रहेगी। सभी गुरुभाई बहिनों से अनुरोध है कि वे अपने-अपने क्षेत्रों मे 'सिद्धयोग' के प्रचार-प्रसार के लिए पूरे मनोयोग से प्रयासरत रहें, ताकि योग-सिद्धान्तों की अखण्ड ज्योति अधिकाधिक महानुभावों के जीवन को आलोकित कर सके। भौतिकता के वर्तमान दौर में भौतिकता की मृगमरीचिका से दिग्भ्रमित हो गये समाज का केवल 'योग' ही यथार्थ दिग्दर्शन कर सकता है। **सिद्धयोग** उनके लिए निश्चित ही योग-शिक्षा का प्रथम सोपान सिद्ध होगा।

सिद्धयोग शीर्षक को सार्थक बनाने मे जिन मनीषी रचनाकारों-लेखकों का निरंतर सहयोग मिल रहा है, हम उनके आभारी है। उनकी उत्कृष्ट-सारगर्भित रचनाएँ ही 'सिद्धयोग' की शक्ति है, जिसका अवलम्बन कर यह पत्रिका उत्तरोत्तर प्रगति-पथ पर अग्रसित हो रही है। विश्वास है श्री सद्गुरुदेव के आशीर्वाद, प्रबुद्ध लेखकों के निरन्तर सहयोग और सुधी पाठकों के सतत् स्नेह से सम्बल पाकर यह योग-पत्रिका वट वृक्ष की भांति योग के साधकों और जनसाधारण के लिए समान रूप से कल्याणकारी सिद्ध होगी।

-व्यवस्थापक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

मुण्डकोपनिषद् २/२/८

कार्य और कारणस्वरूप उस परात्पर परब्रह्म पुरुषोत्तम को तत्त्व से जान लेने पर इस जीव के हृदय की **अविद्यारूप** वह गाँठ खुल जाती है, जिसके कारण इसने इस जड़ शरीर को ही अपना स्वरूप मान रखा है; इतना ही नहीं, इसके समस्त संशय सर्वथा कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो **जाते हैं अर्थात्** यह जीव सब बंधनों से सर्वथा मुक्त होकर परमानन्द स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक–**विनय** गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिन्टिंग प्रेस, ब
राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिन्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित ए
(एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326